श्रीरामः

मानुषी

श्रीसियारामशरण गुप्त

साहित्य-सदन,
चिरगाँव (झाँसी)

प्रथम वार

१९९०

मूल्य

१)

श्रीरामकिशोर गुप्त द्वारा
साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित
और प्रकाशित ।

सूची

श्रीरामः

मानुषी

पार्वती ने कहा—स्वामिन्, बहुत दिन हो गये, नर-लोक नहीं देखा। यदि अनुचित न हो, तो चलने का कष्ट उठा कर दासी का मनोरथ पूर्ण कीजिए।

भगवान् शंकर ने कहा—देवि, ऐसी इच्छा क्यों ? क्या कैलास-धाम से जी ऊब उठा ?

नहीं नाथ, कैलास के आनन्द-उत्सों से जो नीर उत्थित होता है, वह तो नित्य नया है ! यहाँ ऊब उठने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता।

ऊबना नहीं, तो फिर यह क्या है प्रिये !

एक उत्कण्ठा। ऊबना विरक्ति-जन्य है, और उत्कण्ठा आनन्द-जन्य। देखना तो चाहिए, आपका जटा-जूट छोड़ जाह्नवी जीजी जिस लोक में गई हैं, वह कैसा है।

कैलास के हिम-धवल शृङ्गों को और भी समुज्वल करते हुए शंकर अट्टहास कर उठे । बोले—जाह्नवी जीजी पर तुम्हारा अनुराग बहुत है ! यदि उनकी तरह तुम भी वहाँ रह गईं तो ?

स्वामिन, यह कैसा परिहास ! शरीर के आलम्बन को छोड़ कर छाया कहीं रह सकती है ?

तथास्तु । तुम्हारी इच्छा है, तो चलो ।

महादेव-पार्वती नर-लोक के नाना दृश्य देखते चले जा रहे थे । बड़े-बड़े राजप्रासाद निकल गये, जहाँ चञ्चला लक्ष्मी अचला हो कर आलोक किये बैठी थी । बड़े-बड़े उद्यान पीछे छूट गये, जो अपनी महत्ता में, समय-असमय के, अपने-पराये, छोटे-बड़े सब वृक्षों को एक-से वात्सल्य-रस से सींच कर अहर्निश फलित-पुष्पित किये थे । सहसा एक झोपड़ी के भीतर से "ओ जगदम्बा मैया !" सुन कर पार्वती ठिठक कर खड़ी हो गईं । बोलीं—कोई दुखिया जान पड़ती है नाथ ! देखिए न, हमें क्यों याद कर रही है ।

देवि, यह नर-लोक है । यदि इस तरह देखा जायगा, तो यह देखना कभी पूरा न होगा ।

नहीं, इसे तो देखना ही चाहिए। शीत-काल की सुनसान रात, जड़-चेतन सब निद्रा-मग्न हैं। मुझे बड़ी करुणा आ रही है। अनुग्रह करके इसके सब अभाव दूर कर दीजिए देव!

देख लिया। इसे कोई अभाव नहीं है।

कोई अभाव नहीं है? मुझे तो इस उटज में जो कुछ दिखलाई पड़ता है, वह अभाव ही है, और कुछ नहीं।

तुम मुझ-जैसा थोड़े देख सकती हो। मैं 'त्रिनेत्र' जो हूँ!

नहीं नाथ, भक्त सामने कष्ट में है। यह समय परिहास का नहीं है।

देवि, मैं परिहास नहीं कर रहा हूँ। मुझे यहाँ करुणा का कोई कारण नहीं दिखाई देता। इस उटज को देख कर यथार्थ ही अब मैं आनन्द से पुलकित हो उठा हूँ।

नाथ, इस झोपड़ी में ऐसा कौन-सा आकर्षण है, सो समझ में नहीं आया। देखिए, काल के थोड़े-से आघात से ही, आँखों में अँधेरा भर कर, यह किसी वृद्धा की तरह पृथ्वी पर बैठ जाने की सोच रही है। ऊपर की मिट्टी ने खिसक कर स्थान-स्थान पर भित्तियाँ विषम कर दी हैं, मानो उनमें झुर्रियाँ पड़ गई हों। ऊपर छप्पर में जगह-जगह झरोखे बन गये हैं। जाले बुन कर भीतर मकड़ियों ने उन पर परदे डालने चाहे

हैं। ऐसी है यह झोपड़ी । और, इसी को देख कर आप आनन्द से पुलकित हो उठे हैं!

नहीं देवि, इस ओर तो मेरी दृष्टि ही नहीं पड़ी।

धन्य भगवन्, आप यथार्थ ही भोलानाथ हैं! आपने तो इस लोक के नरेन्द्रों को भी मात कर दिया, जिनके सामने ही प्रजा 'त्राहि-त्राहि' करती रहती है, परन्तु उनके कानों का मधु-संगीत किंचिन्मात्र भी कुंठित नहीं होता। आज मालूम हो गया, इस लोक में इतना दुःख-द्वन्द्व क्यों है। जब आपने बाहर ही नहीं देखा, तो भीतर क्या देखा होगा?

प्रस्तर-प्रसूते, मैं कहता तो हूँ, भीतर बहुत कुछ है। तुम स्वयं देख लो न।

मैं प्रस्तर-प्रसूता हूँ, मेरी बुद्धि ही कितनी? बुद्धि होती, तो देख न लेती। परन्तु नाथ, इतना स्मरण रखिए, मैं प्रस्तर की पुत्री हूँ, तो आप भी प्रस्तर से असम्बन्धित नहीं रह सकते। आप इस प्रकार—

भवानि, तुम्हारा यह आवेश भी बहुत सुन्दर जान पड़ता है। इसमें उत्ताप है, परन्तु निदाघ की नहीं, हेमंत की अग्नि-शिखा का।

इधर-उधर की बातें करके आप बात टालना चाहते हैं, मैं यह न होने दूँगी। अच्छा, भीतर ही देखिए, भीतर क्या है?

अविच्छिन्न अंधकार। यदि आपके भाल पर चन्द्र न होता, तो वास्तव में कुछ देख लेना सबका काम न होता। परन्तु इससे क्या? देखने का साधन है, देखने के लिए भी तो कुछ चाहिए। देखिए, यही है न—दो-चार टूटे-फूटे बर्तन; रिक्त रसोई-घर; वह खाट, जिसकी मूँज ढीली हो कर, टूट कर, स्वयं भूमि-शयन करना चाहती है। और कुछ हो, तो आप बताइए।

और वह मानुषी?

उसी खाट पर मलिन कन्था में बँधी हुई वह गठरी ही न? घर—घर नहीं, घर के चिता-वन में एकाकी। उसके ललाट का सिन्दूर-सुधाकर सदा के लिए अस्त हो चुका है। मन की चर्चा ही क्या जब शरीर भी ज्वर-ताप से दग्धीभूत हो रहा है। पास में कोई पानी देने तक के लिए नहीं है। ज्वर की अचेतावस्था में मुझे पुकार रही है। मैं सामने ही अलक्षित हूँ। आप कहते हैं, उसे कोई अभाव नहीं है। यह कैसी समस्या है देव!

यथार्थ ही कहता हूँ देवि, इसके पास जो कुछ है, उसकी तुलना में कोई अभाव टिक नहीं सकता। अभी कुछ विलम्ब नहीं हुआ, कितने ही वैभवशाली नराधिप देख चुका हूँ, कितने ही योगियों को पीछे छोड़ आया हूँ, कितने ही

मनीषियों और कलाकारों का परिचय पा आया हूँ। परन्तु जो कुछ इसके पास देख रहा हूँ, वह इसीके पास है।

यदि यह ऐसी गरीयसी है, तो यह इस स्थान पर सुशोभित नहीं होती नाथ! नष्ट करने के लिए नहीं, उदर भरने के लिए तो इसे भोजन दीजिए। प्रासाद नहीं, ऐसा घर तो दीजिए, जिसमें सिर ऊँचा करके चलने में उसके फूटने का डर न हो।

शुभे, इसका घट ऊपर तक भरा हुआ है। उसमें और कुछ भरने के लिये स्थान नहीं है। इसमें और कुछ ढालने के लिए इसका ओत-प्रोत अमृत निकाल लेना पड़ेगा। यह बात इसके लिए वर नहीं, अभिशाप से अधिक होगी। अभी तुम इस रमणी को वैभव देने के लिए कह रही हो, आगे चल कर अन्धकार पूरित खनि में मणि देख कर कहोगी, इनके उत्पन्न होने के लिए स्थान-स्थान पर सौध खड़े कर दो। यह कैसे हो सकता है?

नहीं नाथ, मै प्रतिज्ञा करती हूँ, मणियों के लिए सौध खड़े कर देने की बात नहीं कहूँगी। विभूति का थोड़ा-सा कण इस महीयसी को ही देने के लिए कह रही हूँ। इसके विषय में आपने जो कुछ कहा है, उसे सुन कर मुझे रोम-हर्ष हो उठा है। इसके लिए किंचित् अनुग्रह करना ही पड़ेगा।

अच्छा, ऐसा करो देवि, इसे तुम जो कुछ देना चाहती हो, स्वयं दे दो। यदि तुम इसे कुछ भी अधिक दे सकोगी, तो मुझे कम संतोष न होगा।

ऐसा करने में कुछ अपराध तो न होगा? भगवान्! मेरे मन में करुणा का उद्रेक हो रहा है, नहीं तो—

नहीं भवति, कोई अपराध न होगा। इस महीयसी को और पास से देखने का अवसर पा कर तुम भी अपनी यह यात्रा सफल समझोगी।

स्वामिन्, आपने मेरी उत्कण्ठा बहुत बढ़ा दी है। यह अवसर हाथ से नहीं छोड़ा चाहती। हाँ, आपको कुछ रुकने का कष्ट उठाना पड़ेगा।

जब तक तुम्हारी इच्छा होगी, मैं सहर्ष रुकूँगा। तुम अपना काम करो देवि! मैं पास ही इस आम्र-वृक्ष के पुष्प में बैठ कर तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।

× × ×

मनोहरलाल की अवस्था १७-१८ से अधिक न होगी, जिस समय उसके पिता कामतानाथ की मृत्यु हुई। मिट्टी के कच्चे घर में जितना पक्का प्रबन्ध किया जा सकता था, वह कर गये थे। आठ-दस बीघे का खेत तो परम्परागत था ही, दो-चार सौ नकद भी छोड़ गये थे। पुत्र को आवश्यकता से अधिक शिक्षित कर गये थे। अर्थात्, वह डाकखाने के मनीऑर्डर-फार्म ही नहीं भर लेता था, वरन सामयिक समाचार-पत्रादि पढ़ कर उनका मतलब भी हृदयंगम कर लेता था। यह सब तो था ही, पुत्र का विवाह करके वह घर में ऐसी बहू ले आये थे, जिसे वह साक्षात् लक्ष्मी समझते थे। यदि पौत्र का मुँह और देख जाते, तो कदाचित् उनकी सब अभिलाषाएँ पूरी हो जातीं।

परन्तु न तो सदा मनुष्य की सब अभिलाषाएँ पूरी होती हैं, और न मनुष्य का सोचा हुआ ही सब समय ठीक निकलता है। पिता की मृत्यु के बाद मनोहरलाल ने जिस पथ का अवलम्बन किया, वह मनोहर तो था, परन्तु वह मनोहरता बनाये हुए नागरिक पथ की नहीं, वन्य पथ की थी, जिसमें आस-पास की पुनीत नैसर्गिक माधुरी के साथ-

साथ कंकड़, कंटक, खड्ड और हिंस्र पशु भी कम नहीं होते। ऐसे पथ पर चलने के लिए जिस साहस की आवश्यकता होती है, उसका अभाव उसमें न था। यदि उस साहस के साथ कुछ चातुर्य उसमें और होता, तो कदाचित् कोई शोचनीय प्रसङ्ग उपस्थित न होता।

एक दिन मुल्लू अहीर ने आ कर मनोहर को अपना दुःख सुनाया। उसके ऊपर रामगोपाल जमींदार के कई सौ रुपये निकलते आ रहे थे। निरन्तर कुछ-न-कुछ दे कर भी वह अपना खाता ड्योढ़ा न करा पाया था। ऋण के इस अंधकूप से उबारने के लिए रामगोपाल ने उसे रात भर रस्सी के सहारे कुएँ में लटका रक्खा था। अन्त में उसकी जमींदारी की कुछ पाइयाँ और कौड़ियाँ ही लिखा कर उसके कई सौ रुपयों की रसीद दे कर उसे सदा के लिए ऋण-मुक्त कर दिया था। मनोहरलाल सब हाल सुन कर ऐसा उत्तेजित हो उठा, मानो यह व्यवहार उसीके साथ किया गया हो। उसने सब संवाद लिख कर झट-से समाचार-पत्र में छपने के लिए भेज दिया।

जब समाचार-पत्र में उक्त समाचार छपा, तब गाँव-वालों को निश्चित रूप से मालूम हो गया कि संसार में अब कलिकाल अपनी सोलहों कलाओं से अवतीर्ण हो गया है। अभी से अपने घर-गाँव की बुराई ऐसी कड़ी भाषा में

बाहर वालों को सुनाई जाने लगी है, तो आगे चल कर न-जाने क्या होगा! ऐसा व्यवहार तो सदा सनातन से होता आया है, परन्तु कभी तो नहीं सुना कि ऐसी बातें इस तरह छपा दी गई हों। यदि किसी धुनिए-जुलाहे ने गुरू के साथ वह व्यवहार किया होता, तो उस पर विचार भी किया जा सकता था। जमींदार के विरुद्ध कुछ कहना ऐसा पाप है, जिसका प्रायश्चित नहीं है। जिस तरह वैकुण्ठविहारी भगवान की प्रस्तर-मूर्ति बनाने की व्यवस्था करके उनकी अर्चा घर-घर सुलभ कर दी गई है, उसी तरह ईश्वर के अंश-स्वरूप नराधिप की सेवा करने के लिए ही जगह-जगह जमींदार प्रतिष्ठित किये गये हैं! अतएव मनोहरलाल के इस नास्तिकाचार के कारण सारा गाँव उसका शत्रु बन गया।

इस व्यापार के आदि-काण्ड में जो गुलू अहीर सबसे आगे था, युद्ध-काण्ड में भी वह किसीके पीछे न रहा। मनोहरलाल ने रात-भर कुएँ में लटके रहने की जो कुत्सा उसके सिर पर लाद दी थी, यथाशक्ति सिर हिला कर उसने उसे दूर कर देना चाहा! खुले में सबके सामने उसने कह दिया—मनोहर ने न-जाने कब का वैर निकालने के लिए ये सब बातें गढ़ी हैं। दाल में नमक के बराबर इनमें सत्य इतना ही है कि मैं ने अपनी जमींदारी का हिस्सा रामगोपाल के

नाम लिख दिया है। ऐसा न करता, तो क्या करता, उनका रुपया मार खाता ? धर्म-कर्म और लोक-परलोक भी तो कुछ हैं।

फलतः एक-एक करके मनोहरलाल के सब हेली-मेली, अड़ोसी-पड़ोसी उससे दूर हट गये। ऐसे भयकर आदमी के साथ किसी की पट कैसे सकती थी। सब बाल-बच्चे वाले गरीब आदमी थे। मनोहरलाल का विश्वास ही क्या, न-जाने कब, किसके विषय में, वह क्या छपा दे !

इस महाभारत का शान्ति-पर्व यहीं पर नहीं हो गया। एक दिन मुन्नू अहीर ने तहसीलदार के यहाँ दावा किया कि मनोहरलाल ने उसे बुरी-बुरी गालियाँ दी हैं, और बुरी तरह मारा है। सब बातें प्रमाणित करने वाले स्वार्थ-त्यागी साक्षियों की भी कमी न थी। उनमें से कुछ सदाशय ऐसे भी थे, जो उस दिन गाँव में भी नहीं थे। नहीं थे, तो क्या हुआ; घर में आग लगी हो, तो नाबदान के पानी से भी उसे बुझाने में दोष नहीं। विपत्ति-काल का धर्म धर्म की छाती रौंद कर ही चलता है ! गाँव वालों ने यह निगूढ़ तत्त्व अच्छी तरह हृदयंगम कर लिया था। अतएव न्याय-देवता की क्षुधा मिटाने के लिए जितने असत्य की आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति करने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं हुई। इस तरह

गाँव भर के, अर्थात् जमींदार के, शत्रु मनोहरलाल को एक महीने की सजा हो गई ।

कारागार से लौट कर मनोहरलाल ने न तो सत्याग्रहियों का-सा स्वागत पाया, और न समाचार-पत्रों का स्तव-गान ही। इस बीच में गाँव के ढोरों ने उसकी खड़ी हुई खेती चर कर उसे काटने और घर लाने के आगामी श्रम-बाहुल्य से अवश्य मुक्त कर रक्खा था।

श्यामा ने रोते-रोते स्वामी के पैरों पर गिर कर कहा— चलो नाथ, इस पापी गाँव को छोड़ कर और कहीं चलो । इन गाँव वालों के साथ रहने की अपेक्षा वन के हिंसक पशुओं के साथ रहना अधिक अच्छा है ।

मनोहरलाल आँखों से आग बरसा कर गरज उठा— क्या तुम भी हमारे शत्रुओं में मिल गई ? तुम्हें जहाँ जाना हो, चली जाओ । किसी के डर से मैं बाप-दादों का घर नहीं छोड़ सकता।

हृदय को समझाने के लिए हृदय की बात ही यथेष्ट होती है। वहाँ तर्क का प्रवेश-निषेध है। श्यामा इतने में ही समझ गई, यह घर छोड़ा नहीं जा सकता । घर जहाँ होता है, वहीं रहता है; चारों ओर अग्नि का ताण्डव-नृत्य होने पर भी उठा कर दूसरी जगह नहीं ले जाया जा सकता।

घर नहीं छोड़ा गया, परन्तु घर की सामग्री धीरे धीरे उसका परित्याग करके रीते पेट भरने लगी। इसका परिणाम बहुत अनुकूल न हुआ। जिस खाद्य में घर के कितने ही गहने-कपड़े और लोटा-बर्त्तनों का सम्मिश्रण था, वह मिलावटी अन्न की तरह मनोहरलाल के शरीर का शोषण करने लगा।

खाट पर गिर कर भी मनोहरलाल ने आराम की ही साँस ली। जिन गाँववालों से वह दूर-दूर रहना चाहता था, उन्हींके बीच रह कर भी उनकी छाया से बचने का उसे सबसे बड़ा उपाय मिल गया। यदि कोई पड़ोसी कभी उसके यहाँ उसकी खबर पूछने आ जाता, तो वह ऐसा व्यवहार करता, मानो रसोई-घर में घूरे का कुत्ता घुस आया हो। श्यामा वैद्य को बुलाने का साहस भी नहीं कर सकी। फिर भी उसने सब हाल कहलवा कर उसके यहाँ से दवा मँगाई। उसे देख कर ही मनोहरलाल आग हो उठा। बोला—सब मेरे साथ शत्रुता रखते हैं, तुम तो मुझे आराम से पड़ा रहने दो। क्या तुमसे मेरा खाट पर पड़ा रहना भी नहीं देखा जाता ? फेंको यह दवा, इसी दम फेंको। यहीं नहीं, घर के बाहर। इसकी गन्ध मेरा दम घोट देगी। जिस ओषधि का देखना-भर इतना विषाक्त था, उसका सेवन कोई लाभ नहीं पहुँचा सकता था।

श्यामा ने तुरन्त बाहर जा कर ओषधि पृथ्वी-माता के अर्पण कर दी।

श्यामा ने दवा का अभाव अपनी सेवा से पूरा करना चाहा। स्वामी में खाट पर बैठने की शक्ति नहीं थी। निरन्तर उनके पैरों के पास बैठ कर उसने उन्हें बैठने का सुख देना चाहा। उन्हें रात को नींद नहीं आती थी। उसने स्वेच्छा से रात-रात भर जाग कर उन्हें अपनी नींद देनी चाही। परन्तु दे न सकी अपने दीर्घ जीवन का एक पल भी। जिस दुर्निवार वेग से व्याघ्र अपने आखेट पर झपटता है, उसी भीषणता के साथ मनोहरलाल का अन्त निकट आने लगा।

उस दिन, रात के प्रारम्भिक अँधेरे में, हाथ में लोटा लिये, श्यामा दूध लेने अहीर के यहाँ जा रही थी। अकेले पथ पर अचानक जमींदार रामगोपाल मिल गया। घूँघट खींच कर, उसे जगह देने के लिए वह एक ओर हट गई। उसने धृष्टता की हँसी हँस कर कहा—"सुन्दरी, तुम इतना कष्ट क्यों करती हो ? जरा हँस कर मुझे आज्ञा दो। सीधी तुम्हारे यहाँ दूध की धार पहुँच जायगी।" केवल दो आँखों से ही नहीं, अपने सम्पूर्ण मुख से त्रिनेत्र के रोष की भीषण ज्वाला बरसाती हुई श्यामा आगे बढ़ गई। जले हुए कंडे की घनीभूत राख की तरह रामगोपाल जहाँ-का-तहाँ जड़ीभूत..हो

गया। बड़ी देर के बाद उसे चेत आया कि वह कहाँ है, और कितनी बड़ी घटना थोड़े समय के भीतर घट चुकी है।

घर पहुँच कर श्यामा स्वामी को दूध पिलाना भूल गई। उनके पैर पकड़ कर आज वह बड़े जोर से रो पड़ी। जिस गीली लकड़ी के एक सिरे पर आग होती है, और दूसरे सिरे से पानी रिसता है, उसी-जैसी उसकी अवस्था थी। स्वामी के सामने इस प्रकार वह कभी नहीं रोई थी। कारण न उसने पूछा, न श्यामा ने ही कहा। उसकी ओर वह इस प्रकार देखता रहा मानो कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं है। इस घटना का हेतु मानो उसके स्मृति-भाण्डार में ही कहीं छिपा हो, और वह उसे वहाँ से बाहर निकालने का विफल प्रयत्न कर रहा है।

मृत्यु के कुछ पहले मनोहरलाल की चेतना-शक्ति घबराये हुए उस स्वजन की तरह लौट आई, जो अपने आत्मीय के अन्तिम समय का समाचार तार से पा कर दूर से आया हो। श्यामा को अपने और पास खींच कर उसने धीमे स्वर में कहा—"श्यामा, मैं ने तुम्हें बहुत दुःख दिया। शायद संसार में किसीको सुख दिया ही नहीं जा सकता। परन्तु यदि मैं तुम्हें अपने जीवन में थोड़ा भी सुख दे सका होता, तो आज अपने आनन्द में मुझे कोई त्रुटि नहीं दिखाई देती।

मालूम नहीं, तुम समझ सकोगी या नहीं, फिर भी आज मुझे जो आनन्द है, उसके सामने कोई चिन्ता, कोई दुःख, कोई अभाव नहीं ठहर सकता। आज मेरे ऊपर किसी का कोई ऋण, कोई अनुग्रह नहीं है। संसार से जो कुछ मुझे मिला था, मैं ने उसका पाई-पाई हिसाब चुका दिया है। उसके समस्त घातक शस्त्रों का, समस्त दुःख और लांछनाओं का आघात, कायर सैनिक की तरह, मैंने पीठ पर नहीं झेला। पीछे के आघात के सामने भी मेरी छाती ही खुली रही है। आज अब मेरे जाने का समय आ गया। मालूम नहीं, तुम संसार को किस तरह सहन करोगी!"

श्यामा की आँखों से झर-झर आँसू झर रहे थे। उसने उन्हें आँचल से पोंछ डाला। केवल आँखों से ही? नहीं, हृदय के अन्तस्तल से भी। शोक की म्लान कालिमा भी कदाचित् उन्हीं के साथ पोंछ दी गई। उसके मुँह पर एकाएक सौन्दर्य का वह तेज फैल गया, जो सहमरण के लिए प्रस्तुत किसी देवी को सब ओर से छा लेता है। उसने सिर उठा कर सहज, शान्त स्वर में कहा—"चिन्ता न करो नाथ! मैं भी संसार को उसी प्रकार सहन करूँगी जिस प्रकार तुमने सहन किया है। मेरे लिए चिन्ता करके तुम आज अपने अन्तिम आनन्द को पीड़ा न पहुँचाओ।"

मनोहरलाल ने पत्नी की ओर देखा । अब की बार उसकी आँखों में भी आँसू दिखाई दिये । कुछ देर के लिए अपनी आँखें बंद करके उसने अपने आनन्द के भार को सहन करना चाहा ।

उसी रात मनोहरलाल ने सदा के लिए आँखें बन्द करलीं ।

जो बैर है, विरोध है, कुत्सित है—उसका जीवन इतना भी नहीं; जितना मनुष्य की क्षणभंगुरता का। अमर वही है, जो प्रेम है, सत्य है, सुन्दर है । तभी मृत्यु की छाया में इनका जीवन पहले भी अधिक उज्ज्वल हो उठता है । आज मनोहरलाल के लिए बहुतों को हार्दिक दुःख हुआ । रामगोपाल भी उसके शव-संस्कार में जाने से न रुक सका । उसके जीवित काल में लोगों ने उसके ऊपर पत्थर ही बरसाये थे । उसने झाड़-पोंछ कर वे पत्थर अपने ही पास रख छोड़े थे। प्रतिघात के लिए आक्रमणकारियों के ही ऊपर न फेंक कर उसने उन सबको निःशस्त्र और निस्सहाय कर दिया था। उन लोगों को अपनी उस असहायता का जैसा पता आज लगा, वैसा कभी नहीं लगा था । वह ग्लानि मिटाने के लिए लोगों ने उसकी चिता पर आँसू और फूल बरसाने में कसर न रक्खी ।

इस घटना के अनन्तर श्यामा उस रूपान्तर में पलट गई, जो मूल से भी बहुत बढ़-चढ़ कर होता है । लोगों को उसे

देख कर आश्चर्य हुआ । घनीभूत धुएँ से भरे हुए कमरे में दीप-शिखा की भाँति वह शोक उसका अणु-मात्र भी अनिष्ट न कर सका । मानों कुछ ऐसा हुआ ही नहीं कि उस पर दया की जाय ।

तेरहीं के दिन उसके भैया ने, निमन्त्रित थोड़े से ब्राह्मणों को भोजन करा चुकने के उपरान्त, कहा—बहन, अब यहाँ तेरे रहने की जरूरत नहीं । चल, वह घर भी तेरा ही है । अपनी छाया में वहाँ अपने भतीजों को आदमी बनने के योग्य कर दे ।

आज वह अपने को सँभाल न सकी । अजस्र आँसू बरसा कर उसने कहा—इसके लिए क्षमा करो भैया ! यह घर छोड़ा जा सकता होता, तो आज यह दिन आता ही नहीं । जिस तरह छुटपन में मेरे अनेक उपद्रव हँस कर सह लेते थे, उसी तरह आज मेरी यह बात भी सहो ।

घर छोड़ने के लिए उसे किसी तरह सम्मत न किया जा सका । भैया के हृदय पर चोट लगी । उन्होंने समझा, विवाह के बाद बहन पर भैया का किसी तरह का भी जोर नहीं रहता । अच्छी बात, इसी घर में रहे । जहाँ उसे सुख हो, वहीं अच्छा ।

दस-पाँच दिन उसके यहाँ और रह कर, उसके रहने का उचित प्रबन्ध करके, उसके भैया आँखों में आँसू भरे हुए क्षुण्ण मन से अपने घर चले गये ।

श्यामा दूसरों का आटा पीस कर और अपना खेत बँट-वारे पर दे कर अपने दिन व्यतीत करने लगी। उसे जो कुछ मिल जाता, वह भी उसके लिए अधिक हो जाता। निज का सब काम करके उसके हाथ और भी कुछ करने के लिए तैयार रहते। उस समय वह पड़ोसियों के यहाँ जा कर उनके काम में हाथ बँटाती। कठोर-से-कठोर मिल-मैनेजर मजदूरों से जितना काम लेता है, अपने शरीर से वह उससे भी अधिक परिश्रम लेती। किसी पड़ोसी के प्रतिदान की आवश्यकता उसे न होती। देवी की प्रतिमा की तरह वह अपने भक्त का अर्पित किया हुआ भोग अपने प्रसाद के साथ उसीके लिए लौटा देती।

उसे स्वामी की फतूही की जेब में सोने की एक अँगूठी मिली थी। बहुत दिन पहले एक विपन्न परिवार ने कुछ जेवर सोने के भाव से भी सस्ते दिये थे। यह अँगूठी उन्हीं में से थी। और सब जेवर गला कर मनोहरलाल ने उनका सोना बेच दिया था। परन्तु यह अँगूठी या तो बिकी न थी, या फिर बेचने के लिए जेब में ही रख छोड़ी गई थी। श्यामा ने भी उसे न बेचा। वह धन का कम-से-कम उपयोग करना चाहती थी। स्वामी की अस्थियाँ त्रिवेणी में सिराते समय उसने वह वहीं दान में दे दी थी।

इस तरह बहुत दिनों तक करते-करते इक्के की उस घोड़ी की तरह उसका शरीर टूट गया, जिसे परिश्रम तो दूना करना पड़ता है, परन्तु खाने के लिए आधा भी नहीं दिया जाता। एक दिन वह खाट पर गिर रही।

उस रात ज्वर के कारण वह अचेतावस्था में थी। बीच-बीच में वह कई बार "ओ भोला बाबा, ओ जगदम्बा मैया!" कह कर चिल्लाई थी। रोग ऐसा जान पड़ता था कि आज उसकी तबीयत और खराब हो जायगी। परन्तु सवेरे उठ कर उसे जान पड़ा कि वह स्वस्थ है। अपनी इस अवस्था पर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। रात को सुषुप्ति की दशा में उसे एक विचित्र आलोक दिखाई दिया था। उसका स्मरण उसके शरीर पर बार-बार अमृत-सा छिड़कने लगा।

श्यामा सूप से नाज फटक कर आटा पीसने की तैयारी में थी कि पड़ोसी तुलसी पण्डित की स्त्री एक वृद्धा को लेकर उसके यहाँ आई। श्यामा ने उसके पैर छू कर उसे बिठाया। पंडिताइन ने कहा—"यह हमारी गिरो मौसी हैं। तुमसे मिलना चाहती थीं। आज अब तुम्हारी तबीयत कैसी है?"

मौसी के पैर फिर छू कर श्यामा ने कहा—"धन्य भाग! आज तो तबीयत ठीक मालूम देती है।"

शब्द को छन्द के साँचे में ढालने के लिए कवि ही स्वच्छाचारी नहीं होते, जन-साधारण भी उच्चारण की सुविधा के लिए यह छूट लेते हैं। मौसी का नाम तो है गिरिजा, परन्तु कहलाती है गिरो मौसी।

दो-चार बातों में ही गिरो मौसी ने श्यामा को इस प्रकार मुग्ध कर लिया, मानों उनके साथ उसका कई जन्म का सम्बन्ध हो। उनके सरल वात्सल्य ने उसकी वर्षों की क्षुधा शान्त-सी कर दी। पंडिताइन तो घर के काम से चली गईं, परन्तु मौसी की उठने की इच्छा न हुई। न तो मौसी को श्यामा से तृप्ति हो रही थी, और न श्यामा को मौसी से।

सन्ध्या-समय मौसी ने श्यामा से कहा—बेटी, तेरी तबीयत ठीक नहीं है। मैं आज रात को यहीं सोऊँगी। मेरे लिए जैसा तुलसी का घर, वैसा ही तेरा। ऐसे में तुझे अकेली न छोड़ूँगी।

बड़ी विचित्र बात है, श्यामा मौसी को रोक न सकी। इस प्रकार किसी की बाध्यता स्वीकार करना उसकी प्रकृति में न था।

उस रात मौसी उसीके यहाँ सोई।

जब डेढ़ पहर रात बीत गई, और चारों ओर सन्नाटा छा गया, तब मौसी ने, इधर-उधर चारों ओर देख कर धीमे

स्वर में कहा—बेटी, मुझे तुमसे एक बात कहनी है। आज दिन-भर से मैं उसीके कहने का अवकाश ढूँढ़ रही थी।

"कहतीं क्यों नहीं मौसी ? मैं सुनती हूँ।"

"अब तेरे सब दुःख-कष्ट दूर हो जायँगे।"

श्यामा ने शंकित हो कर कहा—इस तरह मैं नहीं समझ सकती। साफ-साफ कहो मौसी !

"तुम्हारा जो खेत है, उसकी मेंड़ पर बहुत पुराने समय का एक पत्थर गड़ा हुआ है।"

"हाँ, ठीक कहती हो मौसी, गड़ा तो है।"

"वह पत्थर मामूली नहीं है। बहुत पुराना है, चन्देलों के राज्य का।"

"लोग कहते तो ऐसा ही हैं।"

"झूठ थोड़े कहते हैं। ऐसी ही बात है।"

"होगी मौसी, इससे हमें क्या ?"

"हमें कैसे कुछ नहीं। वह बड़े काम की चीज है। एक बहुत बड़े महात्मा ने बताया है।"

"क्या बताया है ?"

"अपना सिर ऊँचा करके वह अपार धन की चौकसी किये खड़ा है।"

"अच्छा ?"

"उस पत्थर की नोक एक ओर नीची है। उसीकी सीध में पचास हाथ की दूरी पर जाकर फिर उतना ही उस ओर मुड़ जाना चाहिए, जिस ओर पत्थर के सिरे पर एक नोंक उठी हुई है। मनुष्य को वैभवशाली करके ऊँचा उठाने के लिए उसी स्थान पर एक हंडी में ऊपर तक लबालब सोने की मुहरें भरी हुई हैं।"

श्यामा का चेहरा हर्ष से उज्ज्वल हो उठा। बोली—तो चलो मौसी, उसे निकाल दें।

परन्तु इस बात से मौसी को कुछ अच्छा न मालूम हुआ। शायद उन्होंने सोचा—यह स्त्री कैसी है! मैं ने इतनी बड़ी बात बताई, परन्तु इसने कृतज्ञता का एक शब्द भी नहीं कहा। बोली—यह काम इस तरह उतावली में थोड़े किया जा सकता है। सब लोगों को मालूम हो जायगा।

ठीक तो है! श्यामा को अपनी बुद्धि-हीनता पर लज्जा मालूम हुई। बोली—तो बताओ मौसी, क्या करूँ?

पहले उस जगह एक छोटी-सी मड़इया बना लेनी चाहिए। शायद लक्ष्मी देवी को अपना प्रकाश स्वयं देखने का बहुत शौक है, इसीसे वह अँधेरे स्थानों से निकलना पसन्द करती हैं। हाँ, यह तो तुमने कहा ही नहीं, उसमें से मुझे क्या दोगी?

श्यामा चकित हो गई। बोली—यह क्या बात मौसी? मैं तो वह सब धन तुम्हारे ही लिए निकालने की बात सोच रही थी। मैं इतने धन का क्या करूँगी? मुझे तो कोई अभाव नहीं है।

मौसी आनन्द के मारे उछल पड़ी। परन्तु तुरन्त ही अपने को सँभाल कर बोली—मैं यह सब धन कैसे ले सकती हूँ बेटी! तेरी यह कैसी बात कि मुझे कोई अभाव नहीं है?

श्यामा को अपनी बात का प्रतिवाद सुनने का अभ्यास न था। क्षुण्ण हो कर बोली—झूठ बोलने की आदत मुझे नहीं। मैं ने सच ही कहा है, मुझे कोई अभाव नहीं है।

अब की बार मौसी गरम हो उठी। बोली—मैं नादान नहीं हूँ बेटी, जो मुझे इस तरह बहलाना चाहती हो। तुम्हारे कुछ अभाव न होने की बात तो इस घर की बैठती हुई दीवारें ही कह रही हैं! यह खाट, ये लत्ते-कपड़े, ये इने-गिने बर्तन, यह तुम्हारा टूटा हुआ शरीर, सभी तो तुम्हारे अभाव न होने के साक्षी हो रहे हैं! इतनी भोली न बनो। मैं ने क्या देखा नहीं है कि तबीयत ठीक न होने पर भी आज तुम्हें बाहर का नाज पीसे बिना घर का चूल्हा सुलगाने की गति न थी।

क्षण-भर के लिए श्यामा निस्पन्द हो गई। कुछ देर बाद बोली—इस साल फसल बिलकुल नहीं हुई है, और मेरी

तबीयत भी बिगड़ गई। इसीसे यह घर ऐसा हो रहा है। परन्तु यह सब तो मेरा अभाव है नहीं मौसी! इसके लिए तो मुझे कभी कष्ट नहीं हुआ। परन्तु इस तरह तुम न मानोगी, इसलिए आज तुमसे मुझे वह बात कहनी पड़ेगी, जो अब तक किसीसे नहीं कही।—यह कह कर वह वहाँ से उठ गई।

थोड़ी देर बाद वह कुछ ले आई, और मौसी के पैरों के पास मुट्ठी खोल कर खाली कर दी। उन्होंने देखा, कुछ काँच के-से टुकड़े हैं। उसने कहा—देखती हो मौसी, यह क्या है? यह सब धन अधिक नहीं, तो पच्चीस-तीस हजार का अवश्य होगा।

मौसी मानों एक दम आसमान से नीचे उतर कर चौंक पड़ी। बोली—तेरे पास इतनी सम्पत्ति और तू इस प्रकार रहती है!

श्यामा ने कहा—हाँ मौसी, यही बात है। बहुत दिन हुए, एक विपन्न परिवार ने कुछ जेवर हमारे यहाँ सोने के भाव से भी सस्ते बेचे थे। यह समझा गया था कि इसमें जड़े हुए नग मामूली काँच हैं। इसलिये सोना निकाल कर बेच दिया गया था, ये नग यहीं पड़े रहे। उस समय किसी कारण-वश एक सोने की अँगूठी नहीं बिक सकी। उस बार उनके फूलों के साथ वह अँगूठी ले कर मैं प्रयागराज गई। जिनके यहाँ ठहरी,

उन्हींके यहाँ बड़े घर की एक सेठानी ठहरी थीं। एक दिन अचानक दान में दी हुई मेरी वह अँगूठी देख कर वह चौंकीं। उन्होंने कहा—'यह तुम्हें कहाँ मिली? इसका नग तो बिलकुल पक्का है, पाँच हज़ार से कम का न होगा।' सुन कर मुझे बड़ी रुलाई आई। स्वामी बिना चिकित्सा के रोग से घुल-घुल कर स्वर्गवासी हो गये, और उनकी जेब में ही इतनी बड़ी निधि पड़ी रही। उसी समय मैं ने समझ लिया कि घर पर पड़े हुए बाकी के नग भी मामूली नहीं हैं। मेरे मन में आया, अभी घर जाकर ये नग चूर-चूर कर दूँ। फिर सोचा—नहीं, यह ठीक नहीं। जिन रत्नों ने काँच का कपट-वेश रख कर मेरे स्वामी को इतना बड़ा धोखा दिया, उनके लिए यही दण्ड ठीक न होगा। मैं इन्हें उपेक्षा-पूर्वक घर की मिट्टी में, मामूली काँच की ही तरह, एक ओर डाल दूँगी। तभी से ये इसी तरह पड़े हुए हैं। स्वामी से कपट करने वाले रत्नों से किसी तरह का समझौता मुझे ठीक नहीं मालूम हुआ।

कहते-कहते श्यामा की आँखों से झर-झर आँसू झर उठे। मौसी भी अपने को सँभाल न सकी। उठ कर उसने श्यामा को अंक में भर लिया। बोली—बेटी, मेरे सब तीर्थ, सब धर्म, सब कर्म पूरे हो गये, जो तुझ-जैसी देवी के दर्शन मिले। अब मैं तुमसे एक बात और कहूँगी। जिन महात्मा

ने मुझे खेत के उस धन का पता दिया है, उन्हें तेरे पास ले आऊँगी। जिस तरह खेत की मिट्टी अपने भीतर अपार धन रख कर भी सब जगह की साधारण मिट्टी जैसी ही बनी हुई है, उसी तरह वह महात्मा भी अपने भीतर अनन्त सिद्धि साधारण साधु के वेश में छिपाये हुए हैं। दया करके वह तेरे स्वामी को तुझसे मिला देंगे।

श्यामा ने कहा—क्षमा करो मौसी! इस समय मेरा जी न जाने कैसा हो गया है। स्वामी सब माया-बन्धन छोड़ कर मुक्त हो चुके हैं। अब इस लोक की मिट्टी में घसीट कर मैं उनका आनन्द क्यों भङ्ग करूँ? विपत्ति के डर से भी उन्होंने बाप-दादों का यह घर नहीं छोड़ा। अन्त-समय तक वह इसी में रहे। अब तो वह अपने सब पूर्वजों के बीच आनन्द से हैं। मेरे मन की तो सबसे बड़ी साध यही है कि समय आते ही उनकी सेवा में पहुँचूँ, और पैरों पर सिर रख कर कह सकूँ—'नाथ, मैं ने संसार को उसी प्रकार सहन कर लिया, जिस प्रकार तुमने।' बस और कुछ नहीं।

मौसी की आँखों से भी झर-झर आँसू झरने लगे।

× × ×

पार्वती ने कहा—चलिए नाथ, मुझे बहुत समय लग गया !

शंकर ने पूछा—आ गई देवि, भक्त को क्या दे आई ?

कुछ नहीं नाथ, आँखों से भक्ति के आँसू-भर ही। आपने ठीक ही कहा था, उसे कुछ नहीं दिया जा सकता। परन्तु इस हार के लिए मुझे लज्जा नहीं है।

भयति, तुम उसे एक वस्तु देना भूल गई होगी।

क्या स्वामिन् ?

उसका स्वामी।

पत्थर की बेटी कह कर आप मेरी हँसी उड़ाया करते है। परन्तु भगवन्, मैं इतनी निर्बोध नहीं हूँ। उसके स्वामी अहर्निश उसके साथ हैं। यह अभाव भी उसे नहीं है। हाँ, इस विषय में मेरी एक प्रार्थना है।

निस्संकोच कहो देवि !

उसके स्वामी को कैलास-धाम में ही बुला लीजिए, जिसमें समय पर वह महीयसी सीधी यहीं आ कर उनसे मिल सके।

तथास्तु। अब तुमने कुछ ठीक बात कही। तो चलो, और आगे चलें।

नहीं नाथ, तीर्थ-यात्रा करके सीधे घर को ही जाना चाहिए। इसलिए अब कैलास को ही लौट चलिए।

श्रीरामनवमी १९८७

कष्ट का प्रतिदान

रामनारायण को स्टेशन पर गाड़ी के लिए प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। वे और गाड़ी एक ही साथ प्लेटफार्म पर पहुँचे।

कुली ने शिशु-पुत्र को गोद में लिये उनकी पत्नी गोमती और उन्हें असबाब के साथ ही भीतर डिब्बे में ढकेल दिया। जिस तरह कपड़ों से ऊपर तक भरे हुए टीन के ट्रंक में तह किया हुआ एकाध कपड़ा रख कर आसानी से ढक्कन लगा दिया जा सकता है, उसी तरह रेल के भरे हुए थर्ड क्लास के डिब्बे में जब चाहे तब चार-छै आदमी ठूँसे जा सकते हैं। गोमती को बेञ्च पर बिठा कर, रामनारायण को अपने लिए जगह निकालने में बहुत दिक्कत नहीं हुई। वे बैठे, और शीटी दे कर गाड़ी चल दी। मानों वह उन्हीं के बैठने के इन्तजार में खड़ी थी।

पत्नी को साथ ले कर रामनारायण की यह पहली ही यात्रा थी। घर में बच्चों के बीच में उन्हें अपना आनन्द-मिलन ओठ के भीतर संकुचित सीमा में आबद्ध-सा प्रतीत होता था, इसलिए आज घर से बाहर होते हुए भी वे प्रसन्न-वदन थे। बीच बीच में इस प्रसन्नता पर अपने आप लज्जित हो कर वे उसे दबा देना चाहते थे। परन्तु कृतकार्य न होते थे। जिस तरह चलती हुई पिचकारी के ऊपरी रन्ध्र को सहसा हथेली से दबा देने पर जल इधर-उधर की अनजान सन्धियों में से जोर के साथ निकल पड़ता है, उसी तरह आज जरा जरा-सी बात पर उनका आनन्द फूटा पड़ता था। जिन लोगों ने बैठने के लिए उन्हें थोड़ी-सी जगह दी थी उनकी यह साधारण शिष्टता आज उन्हें बहुत अधिक जान पड़ी। 'आपको कष्ट तो नहीं हो रहा?' इत्यादि प्रश्नों के साथ शीघ्र ही उन्होंने मधुरालाप का रंग जमा दिया।

गोमती के लिए भी यह यात्रा कम आनन्द की न थी। चारों ओर आदमी-ही-आदमी होने पर भी इस समय वह अपने स्वामी को अपने निकटतर अनुभव कर रही थी। उसका शरीर आनन्द से कण्टकित हो रहा था। मानों वह स्वामी के साथ अनन्त आकाश में वायुयान पर बैठ कर विहार करने जा रही थी।

रामनारायण लोगों के साथ बात कर रहे थे, गोमती ने खिड़की की ओर मुहँ करके बाहर दृष्टि डाली। गाड़ी वन के बीच में हो कर जा रही थी। जगह ऊबड़-खाबड़ नीची-ऊँची थी। वृक्ष पास पास न थे। फिर भी जान पड़ता था कि सब अपना सौन्दर्य दिखाने के लिए खिसक कर अभेद्य भीड़-सी करके एक के ऊपर एक गिरे पड़ते हैं। मानों वन की समस्त शोभा और सौन्दर्य उसी की ओर दौड़े आ रहे हों! बीच-बीच में खेतों पर काम करते हुए नर-नारी उत्सुक दृष्टि से गाड़ी की ओर देखते हुए दिखाई देते। नया न होने पर भी आज यह सब उसके लिए नये से अधिक था। एक जगह घोड़ी के पीछे-पीछे उसका बच्चा जा रहा था। इतना छोटा 'घोड़ा' उसने पहले कभी न देखा था। शिशु का मुहँ उस ओर करके उसने धीरे से कहा—देख वह तेरा घोड़ा। छोटा घोड़ा और उसके छोटे-से सवार की कल्पना करके वह हँस पड़ी।

गाड़ी कितने ही स्टेशनों पर रुक कर अनेक आदमियों को चढ़ाती-उतारती हुई आगे बढ़ी जा रही थी। यात्रियों में देश की समस्याओं पर गम्भीर विचार हो रहे थे। न जाने कितने प्रस्ताव उपप्रस्ताव उपस्थित हो चुके थे। कितने ही नेताओं पर पुष्प-वृष्टि हो चुकी थी और कितनों ही की

नेतागिरी की सनद् जब्त। स्वराज्य-आन्दोलन के सम्बन्ध में वाद-विवाद का रूप उग्र हो उठा। स्वराज्य के विरोधी जिस तेजी से अपना पक्ष समर्थन कर रहे थे, उसे देख कर रामनारायण को आनन्दित ही होना चाहिए था। देश के ही भीतर इतना ओज और उत्साह संचित है फिर निराशा का काम क्या? परन्तु वे उस उत्साह और ओज को परास्त करने के लिए प्राणपण से लगे हुए थे!

धीरे धीरे धीमी पड़ कर गाड़ी एक छोटे स्टेशन पर रुक गई। गाड़ी की घड़घड़ाहट यात्रियों के वाग्युद्ध में मारू बाजे का काम कर रही थी। उसके बन्द होते ही तर्क और युक्तियों के शस्त्रास्त्र जहाँ के तहाँ छोड़ कर लोग प्लेटफार्म पर दृष्टि डालने लगे। इस स्टेशन पर चढ़ने वाले यात्रियों की संख्या अधिक थी। अर्थात्, व्यय की अपेक्षा आय का परिमाण बहुत अधिक था। यात्रीगण गठरी-पोटली लिये हुए बदहवास हो कर इस डिब्बे से उस डिब्बे की ओर दौड़ रहे थे। गाड़ी के लोग डिब्बों के दरवाजों पर डट कर बाहर वालों के इस प्रचण्ड आक्रमण का वीरता के साथ सामना करने लगे। बाहर वाले अनुनय करते, विनय करते; जोर-जबरदस्ती भी कर रहे थे। दृढ़निश्चयी की भाँति अन्त में विजय उन्हीं को प्राप्त हुई। डाँट-फटकार के गोलों की

बौछार में निर्भयता-पूर्वक वे लोग गाड़ी पर सवार हो ही गये।

जिस समय यह संग्राम हो रहा था, रामनारायण ने विपक्षियों के एक दल को, स्वयं बुला कर भीतर चढ़ा लिया। जयचन्द के कार्य की यह विशुद्ध पुनरावृत्ति देख कर कुछ लोग उन पर बेहद बिगड़ उठे। एक बोला—बस, हो चुका। बहुत देश-भक्ति छाँटने की जरूरत नहीं है। अब दरवाजा बन्द कर दीजिए।

रामनारायण ने कहा—भाई साहब क्रोध न कीजिए। अपने बेचारों की यह छोटी-सी सेवा भी आप सहन नहीं कर सकते, तो फिर—

"बस बस, यह 'छोटी-सी सेवा' आप अपने दौलतखाना शरीफ पर ही कीजिएगा। यहाँ आप किसी दूसरे का दम नहीं घोंट सकते।"

"अच्छा लीजिए, लीजिए" कह कर दरवाजा बन्द करते हुए रामनारायण ने एक स्त्री को और भीतर चढ़ा लिया। सब लोगों के विरुद्ध काम करने के कारण गोमती मन-ही-मन पति पर खीझ रही थी। हिन्दुस्तानियों में ऐक्य न होने का ज्वलन्त उदाहरण उसके सामने था। सोच रही थी—दस आदमियों में मिल कर घंटे भर बैठ सकते नहीं और चाहते हैं स्वराज्य!

युद्ध बन्द हो जाने पर भी अशान्ति-कोलाहल तुरन्त नहीं थम जाता। डिब्बे में बड़ी गड़बड़ मची हुई थी। उस तुमुल ध्वनि में रामनारायण ने सहसा सुना—अरे मेरा लोटा!

यह वही स्त्री थी, जिसे रामनारायण ने अभी अभी चढ़ आने दिया था। उसके चेहरे पर हवाई उड़ रही थी। राजा को अपने राज-पाट जाने का भी इतना दुःख न होगा, जितना उसे अपना लोटा छूट जाने का हो रहा था। उसने दरवाजे की ओर बढ़ने की चेष्टा करते हुए कहा—भैया, मुझे झट-से उतर जाने दो। मेरा लोटा बाहर छूट गया है।

रामनारायण ने दरवाजे की खिड़की से मुँह निकाल कर बाहर देखा। पानी के नल के पास दूर एक जगह उसका लोटा अकेला पड़ा हुआ था। रामनारायण उसके उतरने के लिए दरवाजा खोलने लगे। लोगों ने समझा अब और किसीको चढ़ाया चाहते हैं। अनेक कण्ठ एक साथ गरज उठे—मत खोलो, दरवाजा मत खोलो!

रामनारायण ने सोचा—नीचे उतर कर यह फिर भीतर न आ सकेगी, इसलिए मैं ही इसका लोटा उठा लाऊँ। परन्तु छोटी श्रेणी के आदमियों के काम करने का उन्हें अभ्यास न था। फलतः मन में कुछ संकोच हुआ। एक क्षण में ही उन्होंने फिर सोचा—मुझे हाथ-मुँह धो कर पानी भी

तो पीना है। उनकी समस्या अनायास ही हल हो गई, मुहँ हर्ष से उद्दीप्त हो उठा! उससे कहा—ठहरो, मुझे पानी के लिए जाना है। लोटा मैं ही लेता आऊँगा।—कह कर वे तेजी से नीचे उतर गये।

रामनारायण स्वप्नाविष्ट से हो कर सीधे नल के पास जा खड़े हुए। जो विचार हमारे मन में आते हैं, वे अपनी मर्जी का काम हमारे द्वारा कब करा लेते हैं, यह बात बहुधा हमें मालूम भी नहीं होने पाती। लोटा उठाने की प्रधान बात उन्हें भूल गई। मुहँ धोने के बहाने ने ही उन्हें अपनी ओर खींच लिया। उस समय नल पर कोई आदमी न था। बिना बाधा के हाथ-पैर धो कर आँखों में छींटे दिये और कुल्ला करने लगे।

एकाएक गाड़ी की सीटी सुन कर वे चौंक पड़े, लोटा उठा कर गाड़ी की ओर दौड़े, उनका डिब्बा उनसे बहुत दूर था। दौड़ते-दौड़ते उन्होंने देखा—गाड़ी विशालकाय अजगर की तरह रेंग रही थी, अब उन्हें पीछा करते देख कर भयङ्कर भक् भक् के साथ तेज हो उठी। रामनारायण घबराहट में भूल गये, उनका डिब्बा कौन है। बाहर की छड़ पकड़ कर एक डिब्बे के पैरदान पर खड़े हो गये। भीतर कुछ सिपाही थे, उनका फौजी हुंकार सुन कर उन्हें अपनी भूल

मालूम हुई। नीचे उतर कर वे फिर अपने डिब्बे की ओर दौड़े। गाड़ी तब तक अपनी अलस-मन्थरता छोड़ चुकी थी। अचानक पीछे से एक जमादार ने उनका हाथ पकड़ कर कहा—बाबू, चलती गाड़ी में चढ़ने का हुक्म नहीं है।

प्रयत्न करके भी रामनारायण उसके हाथ से न छूट सके। उन्होंने देखा—गाड़ी भक् भक् करती हुई प्लेटफार्म पार कर गई। दूर तक रेल की पटड़ी दिखाई देती थी। वृक्ष-श्रेणियों के बीच में बने हुए लोह-पथ पर गाड़ी बढ़ी जा रही थी। उन्हें जान पड़ा, किसीने उनका हृदय काट कर दो टुकड़े कर दिया है। मानो उन्हींके ऊपर अपना प्रलय-चक्र चलाती हुई गाड़ी दौड़ रही है। भयङ्कर आँधी जिस तरह पीछे मुड़ कर यह नहीं देखती कि कौन-सी बेल टूटी और कौन-सा पेड़ उखड़ा, उसी तरह घड़घड़ाती हुई गाड़ी को भी पीछे देखने का अवकाश नहीं था! रामनारायण अपने को सँभाल न सकने के कारण वहीं मुरम बिछी हुई पृथ्वी पर धम से बैठ गये।

जब कोई भारी चोट लगती है, तब कुछ देर के लिए चेतना लुप्त हो जाती है, मानो वह उतने में जड़-कठोर होने का अभ्यास करती है। उस अभ्यास के द्वारा जो कुछ प्राप्त होता है यदि वह न हो तो कदाचित् चोट के कारण

बचना कठिन हो जाय। रामनारायण को पहले मालूम हुआ कि पृथ्वी पैरों के नीचे से खिसक रही है। मानो दौड़ कर रेल का पीछा करेगी ! बाद में उन्हें यह याद न रहा कि वे कहाँ हैं। देखने वालों की दृष्टि में यद्यपि वे बेहोश नहीं हुए थे, परन्तु कई क्षण किस तरह निकल गये, उन्हें इसका ज्ञान न हो सका।

उस क्षणिक तन्द्रा के अनन्तर वे चौक-से पड़े। उन्हें जान पड़ा कि वे नींद में झँप गये थे। गाड़ी की आवाज अभी उनके कानों तक पहुँच रही थी। उनकी मूर्खता की कुकीर्ति-कालिमा की तरह इंजिन का धुँवा आकाश में विस्तृत हो कर अभी फैल ही रहा था। फिर भी उन्हें जान पड़ा कि उन्होंने बहुत विलम्ब कर दिया है। दुर्दान्त दस्यु देखते-देखते उनका सर्वस्व छीन कर ले गया और वे निरीह पथिक की तरह खड़े-खड़े देखते रहे। न विरोध किया, न पीछा ही।

अब जमादार के ऊपर क्रोध-भरी दृष्टि डालते हुए गरज कर उन्होंने कहा—क्यों जी, तुम हमें रोकने वाले कौन होते थे? गाड़ी में तो मेरी स्त्री और बच्चा था।

सब हाल सुन कर जमादार खेद प्रकट करने लगा। बोला—मुझे क्या मालूम था कि ऐसी खराबी हो जायगी, बाबू? अभी उस दिन इसी तरह एक आदमी बिना टिकट

गाड़ी पर चढ़ रहा था कि पैर फिसल पड़ा। सारा तन लोहू-लुहान हो गया और आगे के दो दाँत टूट गये। इसीसे कुछ सख्ती करनी पड़ती है। न करें तो नौकरी से निकाल दिये जायँ। अब पहले के-से रहमदिल अफसर कहाँ है? एक वाल्टन साहब थे—

वाल्टन साहब की कीर्ति-कथा सुनने का उन्हें अवकाश न था।

अगला स्टेशन बारह मील दूर था। स्टेशनवालों की सलाह से रामनारायण ने वहाँ तक पैदल जाने का निश्चय किया। दूसरी गाड़ी के आने में अभी आठ घण्टे की देर थी। आगे के स्टेशन मास्टर को एक तार गोमती को उतार लेने के लिए दे कर, रेल की पटड़ी के बगल के मार्ग से वे चल पड़े।

सूर्य अस्त हो गया था। अँधेरी रात का सायंकाल था। शीघ्र ही घने अन्धकार की सम्भावना थी और स्थान अपरिचित, फिर भी वे अपने पूरे वेग से चलने लगे।

उनके हृदय में बिच्छू के डंक की-सी वेदना हो रही थी। हाय! बेचारी गोमती का क्या होगा? यह कभी घर की देहली के बाहर नहीं हुई और मैं ने आज उसे अपरिचितों के बीच छोड़ दिया। भैया ने कहा था—साथ में एक आदमी लिये आओ। मैं ने नहीं माना। अब जब उनके पास मेरी

इस मूर्खता का समाचार पहुँचेगा तब वे क्या कहेंगे ? डिब्बे में अकेली छूट कर गोमती ही क्या कह रही होगी ? यात्रियों को मैं ने कितनी ही नई बातें सुनाईं। अब वही कितना व्यङ्ग-विद्रूप कर रहे होंगे। कह रहे होंगे—अपनी सेवा तो अपने से बनती नहीं; दूसरे की सेवा करने चले थे।—यद्यपि चारों ओर सन्नाटा था, झींगुरों की अविच्छिन्न झंकार में संसार के सारे स्वर विलीन हो गये थे। फिर भी उनके कानों में उस डिब्बे के यात्रियों का प्रचण्ड हास्य स्पष्टतः प्रवेश कर रहा था ! उन्होंने फिर सोचा—कहीं गोमती वहाँ न मिली, किसी गुंडे के चक्र में पड़ गई तो—वे एक दम अवसन्न पड़ गये। पैर एक-एक मन के भारी हो उठे। फिर और कुछ न सोच सके। अपने बैठे हुए हृदय के साथ वे वहीं बीच पथ पर एक जगह बैठ गये।

चारों ओर निर्जन वन था। ऊपर आकाश में तारे टिम-टिमा रहे थे। उनके प्रकाश में इतना ही दिखाई दे रहा था कि चारों ओर अन्धकार है, और कुछ नहीं। थोड़ी देर बाद उन्होंने फिर कहीं से बल सञ्चय किया। उस ऊबड़-खाबड़ पथ पर पड़े हुए प्रस्तर खण्डों पर पैर रखते हुए, उन्हीं जैसे कठोर होने की चेष्टा करते हुए वे फिर चलने लगे।

लगभग आधी रात के समय रामनारायण उस स्टेशन पर पहुँचे। सीधे मुसाफिरखाने में चले गये। वहाँ यात्री-

गए। जागते हुए किसी विषय पर मनोयोग के साथ बातचीत कर रहे थे। एक आदमी से पूछा तो मालूम हुआ, उन्होंने जिस गाड़ी में गोमती को छोड़ा था, वह तीन-चार स्टेशन आगे दयालपुर के पास एक माल गाड़ी से लड़ गई है। दो डिब्बे चकनाचूर हो गये हैं और सैकड़ों आदमी हताहत। इस समाचार को सुन कर वे जहाँ के तहाँ, जैसे के तैसे खड़े रह गये। मुसाफिरखाने में उन्हें गोमती नहीं दिखाई दी। फिर भी उन्होंने अपने को सँभाल कर दो-तीन बार वहाँ फिर देखा। यदि छोटी-सी सुई होती, तो वह उनकी तीक्ष्ण दृष्टि से अगोचर न रहती, परन्तु वह तो गोमती थी! उन्हें वहाँ उसका पता न चला।

जिस तरह बानरी मरे हुए बच्चे को भी छाती से छिपकाये रहती है, उसी तरह मनुष्य नष्ट हुई आशा को भी नहीं छोड़ना चाहता। यद्यपि रामनारायण के मन में निराशा ने अपना पूरा अधिकार जमा लिया था, फिर भी गोमती को देखने के लिए वे स्टेशन के भीतर घुसे। प्लेटफार्म की लालटेनें बुझी हुई थीं। स्टेशन-मास्टर के आफिस में एक लैम्प मन्द-मन्द प्रकाश कर रहा था। भरे बोरों को एक थाप पर स्टेशन के दो निम्न कर्मचारी लेटे हुए थे। ड्यूटी पर असिस्टेन्ट स्टेशन-मास्टर थे। वे एक आराम-कुर्सी पर सोने के ढंग से लेटे हुए थे। हाथ की छोटी

लालटेन बगल में रक्खे हुए एक जमादार बैठा-बैठा निद्रा लेने का अभ्यास कर रहा था। रामनारायण के पैरों की आहट से वह चौंका। उसने हाथ के इशारे से रामनारायण को बुलाया। बोला—तुम यहाँ भीतर कैसे चले आये? जाओ, बाहर मुसाफिरखाने में!

उसके अफसर लोग जिस भाव-भङ्गी के साथ उसे हुक्म दिया करते हैं, जमादार ने उसे खूब अच्छी तरह आयत्त कर लिया था। बल्कि कहना यह चाहिए कि इस विषय में वह अपने गुरुओं से भी योग्य था। उसके ऐसे अप्रत्याशित भाषण से चिढ़ कर रामनारायण ने कहा—हमें स्टेशन-मास्टर से बहुत जरूरी काम है।

धीमे स्वर में जितना भी जोर भर सकना सम्भव है उतना भर कर जमादार ने कहा—"बाबू सो रहे हैं। देखो, उधर मत जाओ, नहीं तो अच्छा न होगा। रात को कोई काम नहीं होता।

इस समय किसी की बात पर बुरा मानने योग्य रामनारायण के मन की अवस्था न थी। नरमी के साथ उन्होंने कहा—शाम की पैसेन्जर गाड़ी से इस स्टेशन पर कोई स्त्री तो नहीं उतरी थी?

"नहीं उतरी।"

"नहीं उतरी ?"

"हाँ, नहीं उतरी, नहीं उतरी। ज्यादा शोर न करो। छोटे बाबू जाग जायँगे।"

कुछ सोच कर एकाएक तेजी के साथ पद-शब्द करते हुए वे स्टेशन-मास्टर के दफ्तर में घुस गये। कुर्सी के पास खड़े हो कर जोर से बोले—बाबू साहब! बाबू साहब!

बाबू ने आँखें खोल कर इस तरह देखा, मानों वे लेटे ही थे, सोते न हों। परिचित की तरह रामनारायण की ओर देख कर मुस्कराते हुए उन्होंने कहा—अच्छा, आप आ गये! आप का तार तो आ गया था, परन्तु आपने डिब्बे का नम्बर नहीं लिखा था।

बाबू के मुहँ पर समवेदना या दुःख का कोई चिह्न न देख कर रामनारायण का पित्त बिगड़ उठा। बोले—"मैं क्या यह सोच कर गाड़ी में सवार हुआ था कि ऐसी घटना हो जायगी, जो गाड़ी का नम्बर देख कर याद रखता? आप लोग यदि हराम का ही न खाना चाहें तो बिना नम्बर के भी सब कुछ कर सकते थे।

"खामोशी से बोलिए। हम लोग आपके मातहत नहीं हैं। गलती करते हैं आप, दोष मढ़ते हैं हमारे मत्थे!"

इसी समय बाहर से आवाज आई—अरे बाबू आ गये, बाबू आ गये !

रामनारायण ने देखा—वही स्त्री है, जिसका लोटा लेने जा कर इस विपत्ति में फँसना पड़ा है। पास आ कर बोली—चलिए बाबू, बहूजी के पास चलिए। वे आपके लिए घबरा रही हैं।

रामनारायण मारे आनन्द के उछल पड़े। बोले—उन्हें उतार लिया था? कहाँ है?

बड़े बाबू के कोठी (कार्टर) में हैं। बड़ा अच्छा हुआ बाबू, जो तुम गाड़ी पर नहीं चढ़ सके। वह गाड़ी तो बाबू, दो-तीन स्टेशन आगे जा कर मालगाड़ी से लड़ गई। बच गये बाबू, बच गये। भगवान मालिक है—

अब छोटे बाबू हँस पड़े। बोले—इसने इतने जल्द समाचार सुना कर सब गड़बड़ कर दिया। नहीं तो आज मीठा मुहँ किये बिना इन्हें न छोड़ता। खैर, मालूम तो भले आदमी होते हैं, अपना ऋण बिना चुकाये न रहेंगे।

रामनारायण ने कृतज्ञता से झुक कर कहा—बाबू साहब, आज का ऋण तो मैं अपना सर्वस्व दे कर भी नहीं चुका सकता। इस लोटे को ही देखिए। इसे ऊपर तक मोहरों से भर दूँ तो भी इसका पूरा मूल्य नहीं चुक सकता।

छोटे बाबू से छुट्टी पा कर उस स्त्री के साथ रामनारायण ने स्टेशन-मास्टर के क्वार्टर में गोमती को देखा। उसके कपोलों पर उसके पूर्व रोदन का इतिहास स्पष्ट अंकित था। जा कर वे एक दम उससे लिपट गये! उसकी आँखों से झर-झर आनन्दाश्रु झरने लगे।

चैत्र कृष्ण ४—१९८५

रुपये की समाधि

चोर! चोर!!

मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मुझे चिल्लाते देख कर भी चोर न तो घबराया और न उसने भागने का प्रयत्न किया। लगे हुए दूसरे घर में नौकर सो रहा था। मेरी चिल्लाहट मुहल्ले भर ने सुनी होगी, फिर दौड़ कर वह क्यों नहीं आया ?

अब वह आदमी मेरी ओर बढ़ा। उसकी उम्र २५-३० होगी। देह दुबली-पतली। मानों किसी बीमारी से अभी उठा हो। साँवले चेहरे में आँखें—नीले आकाश में दो तारों की तरह—टिमटिमा रही थीं। मुहँ सुडौल था। आकृति में एक तरह की तीव्रता थी, जिसे देख कर डर मालूम होता था। घुटनों तक धोती के ऊपर मिर्जई पहने था। बाँयें कन्धे पर मैली पिछौरी थी। पैरों में झब्बूदार जूते। आधी खोपड़ी तक

के बाल उस्तरे से साफ किये हुए थे । देहात में भी आजकल ऐसी वेश-भूषा दिखाई नहीं देती । मुझे एक पुराने चित्र की याद आ गई । उसमें इसी तरह का एक आदमी बना देखा था ।

पास आ कर उसने कहा—भैया मुझे पहचाना नहीं ?

अरे बाप, यह तो पहचान निकाल बैठा ! मैं ने सिर हिला कर प्रकट किया—नहीं।

वह बोला—जब यह मकान बन रहा था तब मैं राज का काम करता था । देवी कारीगर—आया याद ? अपने हाथों तुम्हीं मुझे मजदूरी दिया करते थे ।

मैं खिलखिला कर हँस पड़ा । यह मुझी को बेवकूफ बनाने आया ! बहुत पुराना मकान;—न जानें कब किसने बनवाया होगा । अभी दस महीने भी न हुए होंगे, खरीद कर इसमें रहने लगा हूँ । कहता है—इसे मैं ने बन-वाया था !

मुझे अविश्वास करते देख वह कुछ सोचने लगा । कुछ देर बाद बोला—नहीं भैया, मैं भूलता नहीं हूँ । तुमने चोला बदल दिया है तो क्या हुआ, मैं अपने मालिक को न पहचा-नूँगा ? मनों नमक खा कर इतना जल्द भूल जाऊँ, मैं वैसा आदमी नहीं हूँ ।

उसके चेहरे पर विश्वास की दृढ़ मुद्रा देख कर मेरे अविश्वास की नींव हिल उठी। पूछा—कितनी पुरानी बात कह रहे हो ?

बहुत पुरानी नहीं। सिर्फ सात बीसी और आठ साल हुई हैं। दो सौ पूरे होने में अभी तो बहुत कमी होगी ?

मार डाला ! अभी अच्छी तरह मेरे रेख भी नहीं निकली और मुझे यह एक सौ अड़तालीस वर्ष का बुड्ढा बनाये देता है। मैं ने चिढ़ कर कहा—मालूम भी है, किससे बात कर रहे हो ?

मालूम क्यों नहीं ? भगवन्त भैया से बात कर रहा हूँ।

देख लिया। जाओ जी जाओ। मेरा नाम पुष्करप्रसाद है। भगवन्त भैया को दूसरी जगह ढूँढो।

अब वह ठोड़ी पर हाथ रख कर कुछ सोचने लगा, मानो किसी गोरखधन्धे में पड़ गया हो। थोड़ी देर बाद सन्नाटा तोड़ कर बोला—नहीं भैया, मैं झूठ नहीं कहता। तुमने चोला बदला है, इसीसे नाम भी बदल दिया होगा। हो तुम भगवन्त भैया ही,—मैं शर्त लगा सकता हूँ। अभी उस बात को सात बीसी और आठ बरस ही तो हुए हैं। क्या तुम्हें बिलकुल याद नहीं आता ?

यह तो इसने अच्छे चक्कर में डाल दिया ! बड़ी विचित्र बात सुनाई कि इस मकान को डेढ़ सौ बरस पहले मैं ने ही

बनवाया था और अब मैं फरार आसामी की तरह चेहरा-मोहरा बदल कर फिर यहाँ आ टिका हूँ। हाँ, तुम घर में घुस किस लिए आये ?

उसने अचरज के साथ मेरी ओर देखा। उसके भाव का छायानुवाद इन शब्दों में किया जा सकता है कि क्या यह भी बताना पड़ेगा ? बोला—काम और क्या है; वही अपना रुपया निकालने आया हूँ जो बनते समय इस दीवार में चूने के साथ ईंटों में चुन गया था।

यह कह कर वह दीवार के पास गया। एक जगह हाथ रख-कर उसने बताया—वह रुपया यहाँ गड़ा हुआ है। यह देखो, यहाँ। मुझे निकाल लेने दो भैया, तुम्हारा क्या बिगड़ जायगा ?

दीवार चूने को पक्की बनी हुई थी। मैं समझ नहीं सका कि कैसे इसके अन्दर इसका रुपया गड़ा हुआ है। मैं ने कहा—मैं तुम्हारी पहेली समझ नहीं सका। खुलासा कहो।

उसने कहा—तुम्हें याद नहीं आ रहा है। कहो तो ओर से छोर तक सब हाल सुना जाऊँ। रोशनी कम है। वह दिया कैसे उसकाया जाता है ?

एक ओर छोटी बत्ती की हुई लालटेन जल रही थी। मैं ने कहा—दिया नहीं, यह लालटेन है। उठा लाओ तो रोशनी कर दूँ।

रोशनी हो जाने पर वह मेरे सामने स्टूल पर बैठ गया और अपना किस्सा सुनाने लगा।

"होश सँभालते ही मै ने देखा कि होश में रहने में मजा नहीं है। ताड़ी पी कर जब तक दीन-दुनिया की खबर न भूल जाता तब तक यही याद बनी रहती कि किसी बात की कमी है। आपकी कृपा से मजूरी अच्छी हो जाती थी। चार-पाँच रुपये से कम किसी महीने में न मिलता था। मगर पूरा न पड़ता था। मैं कुछ ज्यादा भी कमा सकता था। किन्तु सच तो यह है कि एक उसी काम के सिवा और सब काम रूखे जान पड़ते थे। स्वर्ग के लोभ से नरक भी बर्दाश्त करना पड़ता है। मुझे दिन भर इसीलिए रूखा काम करना पड़ता था कि साँझ को स्वर्ग का अमृत मिल सकेगा।

इसी समय मेरा विवाह हुआ। अब मैं नये चपले में पड़ गया। मेल मिलाने वाले पण्डित ने न जानें कैसा मेल मिला दिया। मेरा जोड़ा दिन और रात जैसा निकला, जो किसी बात में कभी मिल ही नहीं सकता।

मुझे ताड़ी से जितना प्रेम था, मेरी स्त्री, जगो को उससे उतनी ही घृणा। आरम्भ में ही उसने साफ सुना दिया—खबरदार जो अब कभी ताड़ी पी।—देखने से जान पड़ा जैसे

उसने कोई नई बात नहीं की। मानो वह हमेशा से मेरे ऊपर इसी तरह हुकूमत करती आई है; उसकी आज्ञा माने बिना जैसे चल ही नहीं सकता।

मुझे आशा न थी कि कभी ताड़ी के बिना भी रह सकूँगा। अब मुझे दूसरा ही विचार आने लगा। मैं ने सोचा—यह ठीक है, पक्के रँग में रँगा हुआ काला कपड़ा सफेद नहीं हो सकता; परन्तु यह भी बेठीक नहीं है कि पानी में धोने से, और कुछ नहीं तो, उसका मैल जरूर दूर हो सकता है। मैं ने ताड़ी की मात्रा कुछ कम करना शुरू कर दिया। अब मैं ने देखा—ताड़ी के बिना मेरे आनन्द की आमदनी में जो कमी पड़ती है, वह व्याज और मुनाफे के साथ मेरी स्त्री की प्रसन्नता के खाते में जमा हो जाती है।

मै जोर-जबर्दस्ती के साथ प्रयत्न करने लगा कि ताड़ी बिलकुल ही न पियूँ। परन्तु ताड़ी अपना अधिकार मरने-मारने पर भी छोड़ना नहीं चाहती थी। कभी कभी मैं अब भी बेहोश हो जाता था। उस बेहोशी में भी मुझे इतना जानने की समझ रहती थी कि जगो ऊपर जितनी नाराजी दिखा रही है, छिपे छिपे भीतर से उतना ही प्रेम और सेवा भी कर रही है। वह उस पहाड़ी भूमि-जैसी थी, जो ऊपर से वज्र के समान कठोर होती है और थोड़े ही भीतर से मीठे पानी का झरना बहाती है।

सोते हुए उठ कर चलना जितना खतरनाक होता है, बेहोशी में पैदा हुआ होश भी उससे कम नहीं होता । एक दिन मुझे ऐसा ही होश हुआ । मै ने सोचा—जगो से मैं इतना डरता क्यों हूँ ? वह मेरी औरत है । बात उसे मेरी माननी चाहिए, मैं क्यों उसकी मानूँ ? डरना उसे मुझसे चाहिए, मैं क्यों उससे डरूँ ?

मैं एक दम खिलखिला कर हँस पड़ा । मुझे जान पड़ा—मेरा डर और कमजोरी मेरी हँसी के इस नाले में हो कर बह गई ! आवाज सुन कर जगो दौड़ कर आई । मेरी विचित्र हँसी देख कर वह घबरा उठी ।

उसे देख कर मेरी त्योरी बदल गई । यह मेरा हँसना नहीं देख सकती ? अच्छा देखूँ तो !

मुझे अपने ऊपर झपटते देख कर उसने कहा—यह क्या करते हो ? तुम हो कैसे गये ?

'तुझे मेरा हँसना अच्छा नहीं लगता । बता, क्या मैं पागल हूँ ?'

उसने उत्तर दिया—मैंने कब कहा—तुम पागल हो ? अरे रुको तो—

मैं ने कुछ सुनने की जरूरत नहीं समझी । उठ कर उसे रुई की तरह धुन ही तो डाला । पहले उसने भागना

चाहा,—परन्तु बाद में भागने की चेष्टा न करके चुपचाप मार खाने लगी। जब मालूम हुआ कि चाहने पर भी अब यह आसानी से भाग नहीं सकती, तब उसे छोड़ कर मैं बाहर निकल गया। काम से चित्त बहुत प्रसन्न नहीं हुआ। यह सोच कर जी को ढाढ़स देने का प्रयत्न किया कि स्त्री के डर की कैद तोड़ कर बाहर जा रहा हूँ। बहुत हुकूमत करती थी। अब समझ जायगी, किसी मर्द से पाला पड़ा है!

इधर-उधर घूम-फिर कर एक सम्बन्धी के यहाँ पहुँचा। रात आराम से कट गई। दूसरे दिन भी वहीं बना रहा। परन्तु तीसरे दिन किसी तरह वहाँ न रह सका। वे लोग मेरे साथ इस तरह का व्यवहार करने लगे, मानो मैं कोई पागल होऊँ। मुझे बड़ा क्रोध आया। धूप और गर्मी का विचार किये बिना ही मैं उसी दम वहाँ से चल पड़ा।

जब घर पहुँचा, दोपहरी झरझरा रही थी। रास्ते में आदमी नहीं मिले। कहीं दो-एक दिखाई भी दिये तो जल्द-जल्द पैर बढ़ाते हुए। मैं भी ऐसा भाव दिखा कर चलता, मानो कोई बहुत जरूरी काम करके घर जा रहा हूँ। किसी को मुझसे बात करने की फुर्सत न थी। इससे मुझे प्रसन्नता ही हुई। गरमी ऐसी थी कि छाया भी पैरों के नीचे जा कर

छिप जाना चाहती थी ! दबे पैरों जा कर किवाड़ की साँस में से भीतर देखा। जगो कुछ उठा-धरी कर रही थी। दाँयी बाँह में पट्टी बँधी हुई थी। अपनी करतूत का फल, शरीर के थोड़े स्थान में, कपड़े की पट्टी के अन्दर छिपा हुआ देख कर मैं ने आराम की साँस ली। मेरे मन में आया कि कहीं इसने देख लिया कि मैं पागल की तरह दबक कर झाँक रहा हूँ तो क्या सोचेगी ? झट किवाड़ धक्के से खोल कर मैं भीतर चला गया। घर मेरा, मालिक मैं; फिर डर की क्या बात ? दीवार से टिकी हुई खटिया बिछा कर मैं गम्भीर भाव से उस पर बैठ गया। मैं सोच ही रहा था कि जगो से क्या कहूँ, तब तक वह एक पंखा ला कर मेरे ऊपर हवा करने लगी। उसके हाथ से पंखा खींच कर मैं ने कहा—हवा तो बहुत खा आया हूँ, कुछ रोटी-ओटी हो तो लाओ।

बिना झंझट इतनी आसानी से सन्धि हो जायगी, इस बात की कल्पना भी मुझे न थी।

खा-पी कर, अकेले में अवकाश पा कर परसदिया से मैं ने पूछा—क्यों रे, मेरी अनुपस्थिति में तेरी काकी कुछ कहती तो न थी ?

लड़के ने रोनी सूरत बना कर कहा—मैं ने तभी से गुड़ नहीं चुराया काका। बिना कुछ किये वे क्या कहतीं ?

उसे दिलासा दे कर मैं ने कहा—मैं गुड़ की बात नहीं पूछ रहा हूँ। मेरे बारे में तो कुछ नहीं कहती थी?

बहुत घुमा-फिरा कर बड़ी मुश्किल में मैं उसके मुँह से इतना जान पाया कि उसे इस बात का सन्देह है कि मैं तुलसिया के यहाँ चला गया हूँ और वह भी किसी दिन अपने मायके चली जायगी। उसने मुझे पागल नहीं बताया, इस बात का पूरा आनन्द मैं न ले सका। चले जाने का निश्चय करके ही क्या उसने आज मुझसे कोई कड़ी बात नहीं की?

मैं इसी उधेड़-बुन में पड़ा हुआ था। जगो को सूप लिये हुए सामने देख मैं ने कहा—सुनती हो?

'क्या?'

'मैंने प्रतिज्ञा की है, अब ताड़ी न छुऊँगा।'

वह अपना काम करती हुई बिना मेरी ओर देखे बोली—यह तो कई बार सुन चुकी हूँ।

मैं एक दम उत्तेजित हो उठा। बोला—नहीं अब की बार वैसी बात नहीं है। बिलकुल सच कह रहा हूँ। झूठ नहीं, बिलकुल सच, तुम्हारी सौगन्ध—

बेरोक कितनी ही बातें कह गया। अपनी सौगन्ध खाते देख कर भी उसने मुझे नहीं रोका। चुपचाप डहर में से

नाक निकाल कर वह सामने से चली गई। अपनी उस उत्तेजना का विचार करके मुझे लज्जा लगने लगी। तो क्या मैं सचमुच कुछ पागल तो नहीं हो रहा हूँ!

उन दिनों तुम्हारा यह मकान बन रहा था। मेरी प्रार्थना सुन कर तुमने मुझे काम पर लगा लिया। पहिले दिन काम से लौट कर मै ने जगो से कहा—सुनती हो?

'क्या?'

'मै ने सोचा है, अब की बार जैसे भी हो, खर्च से रुपये बचा कर तुम्हारे लिए चाँदी के कड़े बनवाऊँगा।'

उसने कहा—चलो रहने दो। ऐसे होते तो कब के बनवा चुके होते।

मैं आनन्द के मारे उछल पड़ा। मेरी यह बात उसने सुनी तो! मैं ने पास जा कर उसकी ठोड़ी पर हाथ रख कर कहा—तुम विश्वास नहीं करतीं, मैं रुपये जरूर बचा लूँगा। अच्छा, अब से सब रुपये तुम्हारे ही हाथ में दिया करूँगा। जब कड़े बनने योग्य हो जायँ, तुम्हीं बनवा लेना।

अकसर मुझे रात को नींद कम आती थी। उस रात प्रसन्नता के मारे बिलकुल ही न आई। रात भर यही सोचता रहा,—जब कड़े बन जायँगे तब जानेगी कि माँ-बाप ने किसी पगले के मत्थे ही नहीं मढ़ दिया। वाह, मैं ने क्या अच्छी बात सोची!

इधर यह घर बनता जा रहा था। काम करने वालों में तुलसिया भी थी। बड़ी काम की औरत थी। उसके घर के पास ही ताड़ी की दूकान थी। इसलिए उसके साथ मेरी जान-पहचान पहले की थी। इस जान-पहचान के कारण एक दिन जगो के साथ मेरा झगड़ा हो गया था और मुझे दिन भर एकादशी व्रत करना पड़ा था। अन्त में नाक रगड़ कर मुझे क्षमा माँग कर कहना पड़ा था कि अब मैं उस तरफ कभी न जाऊँगा। दैवयोग से तुम्हारे यहाँ काम पर मेरा और उसका साथ फिर हो गया। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अब जगो उससे बातचीत करने के लिए मुझे कैसे रोक सकती थी? मालिक का काम करने के लिए तो उसके साथ मुझे रहना ही पड़ेगा।

तुलसिया के कारण काम में बड़ी चहल-पहल रहती। उसके मुँह पर हँसी खेलती ही रहती थी। उसकी बात बात में फूल झड़ा करते। कभी कभी उसके साथ चुहल का रंग ऐसा जम उठता कि लोग अपना अपना काम भूल जाते। परन्तु इस पर तुम ध्यान न देते थे। इस बात को ले कर हम सब में कितनी ही बातें हुआ करतीं। लोग कहते कि तुम— खैर, उस बात से कुछ प्रयोजन नहीं है। हाँ, जहाँ तुलसिया के कारण काम में कुछ ढील पड़ जाती थी, वहाँ कभी कभी ऐसी तेजी भी आ जाती थी कि सब कसर निकल जाती।

हम सब में होड़ लगती, जो काम में सब से तेज निकलेगा, तुलसिया उसीके साथ काम करेगी। इस होड़ में चूना, गारा, ईंट और कन्नी को वह कसरत करनी पड़ती कि हाँ! उस समय खटापट खटापट के सिवा और कुछ सुनाई न देता। आग बुझाने के लिए जिस तरह आदमियों को दौड़ कर जाना पड़ता है, उसी तरह दौड़ दौड़ कर मजदूर फुर्ती से मसाला देते। चिलम में तमाखू बिना पिये ही फुँक जाती। गाँव-मुहल्ले के कितने ही मनोरंजक प्रसङ्गों की अकाल मृत्यु हो जाती। यहाँ तक, तुलसिया की याद भी भुला देनी पड़ती! इस होड़ में जीत का सेहरा अक्सर मेरे सिर बँधता। इससे उसे भी प्रसन्नता होती। चारों ओर से तालियाँ बज उठतीं और गर्व से मेरी छाती फैल जाती।

एक दिन ऐसी ही जीत के बाद छुट्टी मिलने पर तुलसिया ने कहा—आज तुमने बहुत ज्यादा मेहनत की है। ताड़ी की दूकान पर न चलोगे?

मैं ने निराश भाव से कहा—क्या करूँ, जगो से कह चुका हूँ कि अब ताड़ी न छुऊँगा।

'अच्छा तुम न छूना। मैं अपने हाथ से तुम्हें पिला दूँगी। इतनी मेहनत के बाद भी अगर न पियोगे तो छाती फट जायगी।'

मैं एक दम खिल उठा। वाह, क्या अच्छी तरकीब सोची! स्त्री हो तो ऐसी। बिना कुछ हीला-हवाला किये मैं उसके साथ हो गया।

कितनी रात गये कब और कैसे कहाँ से लौट कर मैं घर पहुँचा, मुझे इस बात की खबर नहीं है। दूसरे दिन पहर भर दिन चढ़े जब मेरा सबेरा हुआ, तब मैं जान सका कि ताड़ी की दूकान पर नहीं, घर पर हूँ। मस्तक कुछ भारी जान पड़ा और गला सूखा हुआ। मैं ने जगो से एक लोटा पानी माँगा। वह बिना कुछ कहे, कतरा कर एक ओर चली गई। मैं ने समझा, मेरी जीभ ठीक काम नहीं देती है, इसीसे वह मेरी बात समझ नहीं सकी।

मैं हाथ में चिलम लिये बैठा बैठा कुछ सोचने लगा। थोड़ी देर बाद वह स्वयं ही, न जानें क्यों पानी का लोटा भर कर मेरे पास रख गई। मुँह से उसने कहा कुछ नहीं। मैं भी सोच न सका कि उससे क्या कहूँ।

देर से ही सही, मैं जागा तो था। परन्तु उस दिन घर के चूल्हे के जागने का कोई लक्षण दिखाई न दिया। अपने हाथ से बासी रोटी उठा कर खाने के लिए बैठा। चार-छै कौर किसी तरह निगले, परन्तु और खाया न गया। पानी पी कर वैसा ही उठ बैठा। काम पर जाने के लिए घर से

निकलने वाला ही था, त्योंही मुझे याद आया कि कल मुझे मजूरी मिली थी। जेब टटोली तो चेहरा फक हो गया। बहुत सोचने पर भी याद न आया कि रुपया कहाँ गया। किसी तरह हिम्मत करके जगो से पूछा—तुमने रुपया निकाला था ?

सवेरे से अब तक उसने मेरी किसी बात का उत्तर नहीं दिया था। इस बार वह फूटे काँसे की तरह झनझना उठी। बोली—कहाँ का रुपया, कैसा रुपया ?

'कल मुझे मजूरी मिली थी।'

'तो मुझसे क्या कहते हो ? उस हरजाई से जा कर पूछो—जहाँ रात बिलमे थे।'

मैं ने एक दम इंकार कर दिया—संझा से घर के बाहर पैर नहीं दिया, रात कहाँ बिलमा ?

आग छुआ देने से बारूद जिस तरह भभक उठती है, उसी तरह वह आपे से बाहर हो गई। बोली—लो, मैं ने चोरी की है। तुम दोनों मिल कर जो बने, कर लो मेरा !

धरौअल लहँगा और चूनरी पहन कर वह उसी दिन अपने मायके चली गई। मैं ने बहुत मनाया, हा हा खाई, परन्तु उसने न सुना। जाते समय कह गई—अब कभी इस घर में पैर दूँ तो मरे मानस का माँस खाऊँ।

अकेला रह गया। सूने घर में मुझे चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा दिखाई देने लगा। घर के बाहर होने को कहीं जी न चाहा। घर में साँझ का दिया सोता पड़ा रहा। बिछौने का पुलिन्दा कोने में जहाँ का तहाँ रक्खा रहा। मैं आँगन में धरती पर ही लेट गया। जी में न जाने कितना क्या आया और कितना क्या गया, परन्तु नींद पल भर के लिए भी न आई। सोचता रहा, जैसे भी हो वह रुपया ढूँढ निकालना चाहिए। जगो को यह विश्वास जमा देना ही होगा, कि मैं ने यह रुपया तुलसिया को नहीं दिया।

सोचते सोचते मेरे गरम मस्तक में विचार आया कि रुपया ले कर मैं ने अधबनी दीवार पर रख दिया था और चिलम पीने लग गया था। सबेरा होते ही हाथ-मुँह धोये बिना सीधा यहीं चला आया। काम करने वाले उस समय काम पर नहीं आये थे। एक दिन में यह दीवार और ऊँची उठ चुकी थी। हाथ में लोटा लिये हुए तुम बाहर मैदान जा रहे थे। मुझे देख कर न जानें क्यों चौंक पड़े। बोले—क्यों देवी, तुम्हारा चेहरा यह कैसा हो गया है? तुम्हें कुछ हो तो नहीं गया?

मैं खुल कर रो पड़ा। तुम्हारे दिलासा देने पर मैं ने कहा—भैया, परसों तुमने जो रुपया दिया था वह इस

दीवार में चुन गया है। इसे खोद कर मुझे वह निकाल लेने दो।

तुमने आश्चर्य के साथ कहा—पागल तो नहीं हो गये देवो ! दीवार खोद कर एक रुपया निकालने में कितना खर्चा पड़ेगा, तुम यह नहीं सोचते ?

तुम्हारे पैर पकड़ कर मैं ने कहा—मालिक, तुम राजा हो। तुम्हारे लिए हजार रुपये भी कोई चीज नहीं। मुझे अपना रुपया निकाल लेने दो। भगवान तुम्हारा भला करें !

मेरा गिड़गिड़ाना और रोना सुन कर मुहल्ले के सब लोग आ कर इकट्ठे हो गये। सब लोग मेरा माथा फिरा समझ कर दुःख करने लगे। परन्तु मैं आज तक यह नहीं समझ सका कि अपना रुपया निकालने आ कर मैं ने क्या पागलपन किया था। फिर भी अपना काम था, चुपचाप सबकी सुननी पड़ी।

मेरी दीनता देख कर तुमने भीतर से मँगा कर मुझे एक रुपया दिया। ले कर मैं ने उसे दूर फेंक दिया। भला सोचो तो—मैं भीख लेने आया था ? मुझे तो जगो को यह बताना था कि मैं ने तुलसिया को रुपया नहीं दिया। वह दीवार में ईंट-चूने के साथ चुन गया है। तुम्हारी चाल भरी

बातें सुन कर मुझे क्रोध हो आया। मैं ने कहा—अच्छा, देखूँगा!

उसी रात आधी रात के सन्नाटे में कुदाली ले कर घर से निकला। न तो आकाश में पक्षी थे और न पथ में आदमी। धीमी-धीमी हवा चल रही थी। पेड़ों के पत्ते आपस में मिल कर सन सन शब्द कर रहे थे। मैं सीधा वहीं दीवार के पास आ कर खड़ा हो गया। उस समय इस घर में किवाड़ नहीं लगे थे। यह छत भी नहीं थी। मुझे यहाँ तक पहुँचने में कोई रुकावट न हुई। मैं ने दीवार पर धीरे से ज्योंही कुदाली मारी त्यों ही वह 'धम्म' शब्द के साथ चिल्ला पड़ी! पास पड़ा हुआ जमादार भी चिल्ला उठा—चोर है; दौड़ो, रामसिंह दौड़ो!

कुदाली वहीं छोड़ मैं जान ले कर भागा। रामसिंह, श्यामसिंह किसी की हिम्मत न पड़ी कि मेरा पीछा करते। मैं ने घर पहुँच कर दम ली। मुझे बड़े जोर की हँसी आई। अँधेरा घर उससे प्रतिध्वनित हो उठा। लोग अपना मस्सा न देख कर दूसरे का तिल देखते हैं। मुझे तो पागल कहते हैं और स्वयं इतना भी नहीं जानते कि वहाँ मैं था या चोर!

जान पड़ता है मेरी कुदाली पहचान कर लोगों ने समझ लिया कि मैं गया था। इसी से उस दिन से वहाँ रात को पहरा

रहने लगा। मैं ने बहुत चक्कर काटे परन्तु अवसर हाथ न आया।

एक दिन मैं ने सोचा—जब तक रुपया निकालने का अवसर हाथ नहीं आता तब तक जगो को तो एक बार देख आऊं। कहूँगा—मैं ने यह रुपया किसीको दिया नहीं है, दीवार में चुन गया है। सब सुन कर वह अवश्य मान जायगी। आह! ऐसी दयावती स्त्री को भी मैं प्रसन्न न रख सका।—धमाक से मैं ने अपना सिर पीट लिया।

उसी दिन नाई से ऐसे ही बाल बनवा कर, यही मिर्जई और जूते पहन कर मैं ससुराल के लिए चल पड़ा।

सावन का महीना था; हवा में शीतलता आ गई थी। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, हरियाली और जल ही जल था। आकाश में सुहावने बादल छाये हुए थे। कोकिल की 'कुहू-कुहू' और पपीहे की 'पी-पी' बार बार कानों में अमृत चुवा रही थी। मैं आनन्द से भरा हुआ आगे बढ़ा जा रहा था। मुझे लग रहा था कि इसी हवा के साथ उड़ कर जगो के पास पहुँच जाऊँ!

मैं कह क्या रहा था?—हाँ,—साँझ के समय मैं नदी किनारे पहुँच गया। साँझ ही समझनी चाहिए, बरसात में तो सदा साँझ ही बनी रहती है। नदी बढ़ी न थी।

बरसा के कारण यह चढ़ आई थी। धनियों की कृपा की तरह वह आठ पहर से अधिक चढ़ी न रहती थी। इतने समय के लिए भी रुक रहना मुझे बहुत भारी हो उठा।

नदी किलोलें करती हुई बही जा रही थी। पानी अपने आप से ही टकराता हुआ, उलझता हुआ, जो मन में आता वही कहता हुआ जा रहा था। कभी किनारे पर इधर आघात करता, कभी उधर। मैं ने देखा—पागल है तो यह! उसका यह पागलपन मुझे बहुत अच्छा मालूम हुआ। उस पागल के साथ मिल कर खेलने के लिए मेरा मन चञ्चल हो उठा!

पानी उतर जाने की बाट जोहनी अब मुझे और भी बुरी लगने लगी। उस पागल प्रवाह को परास्त करके अगो के पास शीघ्र पहुँचने के लिए मैं धम-से पानी में कूँद पड़ा।

परन्तु उस पार जाना जितना सरल समझता था, उतना न निकला। बीच धार तक पहुँचते पहुँचते मेरी सारी शक्ति चुक गई। अर्जुन के पुत्र की तरह मैं चक्राव्यूह में घुस तो गया, परन्तु उससे निकल आने की कोई युक्ति मुझे न सूझी। शरीर को शिथिल करके मैं ने सुस्ताना चाहा कि एक गोता लग गया। मुझे उस समय की सब बातें याद नहीं हैं। जान पड़ता है कि मैं कुछ देर के लिए बेहोश हो गया था।

जब मुझे चेतना आई तब बड़ा अचरज हुआ। मैं ने देखा कि मैं तो पानी के ऊपर धरती की तरह चल सकता हूँ। वाह, यह तो बड़ी अच्छी युक्ति मिली! अरे, यह क्या, मैं तो अधर में भी चल सकता हूँ! तो चलूँ, जगो को अपना हुनर दिखा कर चकित कर दूँ।

परन्तु न मालूम मुझे कैसे दिशा-भ्रम हो गया। ससुराल न पहुँच कर मैं यहीं मकान के पास पहुँच गया। मस्त लगी हुई थी। जगन, जवाहिर, बोधे सब अपने अपने काम में जुटे हुए थे। तुलसिया एक डलिया में ईंटें भर कर मुस-कराती हुई ले जा रही थी। मैं ने सोचा—यह भी अच्छा हुआ। पहले इन्हीं को अपना हुनर दिखा दूँ।

मैं पास आ कर खड़ा हो गया। परन्तु किसीने मेरी ओर देखा तक नहीं। मैं ने नाम ले कर पुकारा—जवाहिर! परन्तु न तो उसने मेरी ओर देखा और न और किसीने—

अरे यह क्या, पंछी बोलने लगे! तो अब मै यहाँ नहीं ठहर सकता। फिर किसी रात आ कर और बातें करूँगा।"

सचमुच पक्षी चहचहाने लगे थे। पलंग से उठ कर मैं आँखें मलने लगा। न तो वहाँ वेदी कारीगर था और न उसके वहाँ होने का कोई चिन्ह। फिर भी उस घटना में मैं

अविश्वास न कर सका। उसी दिन अच्छे चौखटे में जड़ कर महावीर जी का चित्रपट वहाँ लटका दिया और अमुक्त आत्मा के कल्याण के लिए सेंदुर से चारों ओर महामन्त्र 'श्रीराम श्रीराम सीताराम' लिख दिया।

आषाढ़ शुक्ल १—१९८६

पथ में से

हमेशा के झंझट से छूटने का भाव दिखाते हुए मैं ने कह दिया—अच्छा चलो; परन्तु आज के ही लिए। फिर कभी नहीं।

रामदेव जोर से हँस पड़ा, बोला—फिर कभी ले चलने की मुझे जरूरत न पड़ेगी। फिर तो तुम्हीं मुझे घसीट कर ले चला करोगे।

अपनी झेंप मिटाने के लिए मैं ने हँस कर उसके कन्धे पर अपने दोनों हाथ दे मारे। कहा—तुम बड़े दुष्ट हो!

रामदेव को 'दुष्ट' कहना ही उसकी सबसे बड़ी प्रशंसा थी। अपनी दुष्टता के गौरव का अनुभव करके उसका मुहँ आनन्द से और भी दमक उठा। मुझे चलने के लिए बिलकुल तैयार देख कर मुँह पर विस्मय का भाव लाते हुए बोला—भले आदमी, आज भी यह टाट ही पहने रहोगे? घण्टे-भर

के लिए इसे छोड़ दोगे, तो जन्म-भर का पुण्य चला न जायगा !

रामदेव 'टाट' कह कर मेरे खद्दर की हँसी उड़ाया करता था। असहयोग के दिनों की उत्तेजना के वशीभूत हो कर मैं ने खद्दर पहनना शुरू किया था। बाद में मालूम हुआ कि यह वेश धारण करना जितना आसान है, इसे निभा ले जाना उतना ही कठिन है; परन्तु केवल इसीके कारण जनता से जो श्रद्धा प्राप्त थी, वह आसानी से नहीं छोड़ी जा सकती थी। खद्दर मेरे लिए वह चटपटा भोजन हो गया था, जो अपनी तीक्ष्णता के कारण आँखों से आँसू लाता है, फिर भी जीभ से नहीं छोड़ा जाता। मैंने रामदेव की बात का कोई जवाब न दिया। चुपचाप उसके साथ हो लिया। न-जाने क्या सोच कर उसने भी कुछ नहीं कहा।

मेरे मन में विचारों की एक हलचल शुरू हो गई। जिस कुत्सित पथ पर आज मैं जा रहा था, वह मेरे लिए बिलकुल नया था। अपने स्खलन की सारी जिम्मेदारी रामदेव के सिर डाल कर मैं निश्चिन्त होने की चेष्टा कर रहा था। विचार-प्रवाह के साथ-साथ मेरी चाल भी बढ़ती जा रही थी।

बीच में ही मेरी विचार-शृंखला तोड़ कर रामदेव बोल उठा—अरे, अभी से ऐसा नशा चढ़ गया, कि रास्ता भी

भुला दिया ! उसकी बात सुन कर मैं ने चौंक कर देखा—जिस गली में मुड़ जाना चाहिए था, उसे छोड़ कर मैं सीधा आगे बढ़ रहा हूँ। लज्जित हो कर मैं उसके पीछे हो गया।

यह वह रात थी, जो पूर्ण कलाधर को पूरा का पूरा निगल कर भी प्रकाश के लिए राक्षसी क्षुधा रखती है। म्युनिसिपैलिटी की दरिद्र लालटेनें अपने ऊपर अन्धकार का 'ग्लोब' चढ़ा कर टिमटिमा रही थीं। ऊपर नक्षत्रों ने भी बादलों का आवरण चढ़ा रक्खा था। यह कुछ बुरा न था; वरन् मेरी लज्जा ढकने के लिए यही सबसे बड़ा आधार था।

अपनी दुर्बलता दूर करने के लिए मैं ने इधर-उधर से खरोंच-खरोंच कर शक्ति इकट्ठी की। समय के विचार से उसे दुर्बलता ही कहना चाहिए—और क्या। कृष्ण ने अर्जुन को जिस प्रकार उद्बोधित किया था, कुछ कुछ उसी प्रकार मैं भी अपने को सशक्त करने की चेष्टा कर रहा था।

मैं आगे बढ़ता चला। सहसा मुझे प्रतीत हुआ कि मेरे पीछे कोई लगा हुआ है। देखने के लिए मैं ने पीछे की ओर गर्दन मोड़ी। गली के उस घोर अन्धकार में दीखने को क्या था ? फिर भी न-जाने क्यों मुझे अनुभव हुआ कि मेरी स्वर्गीया माता अन्धकार के परदे में छिपी-छिपी मेरे पीछे आ रही हैं। मेरा सारा शरीर कण्टकित हो उठा।

रामदेव ने फिर चुटकी ली। बोला—भाई मुझ से छिपा कर चुपचाप मन के लड्डू क्यों उड़ा रहे हो? सच्चे लड्डू अभी तो सामने आये जाते हैं!

अपनी चिन्ता दूर करने के लिए मैं उससे बातें करने लगा। मै स्वयं नहीं सोच सकता था कि क्या कहना चाहिए; अतएव यदि उन असम्बद्ध बातों को यहाँ न लिखूँ, तो आशा है, साहित्य की बहुत बड़ी हानि न हो जायगी।

अब हम लोग उस गली में आ पहुँचे, जहाँ हमें जाना था—जहाँ नित्यप्रति यौवन और श्री का विसर्जन होता रहता है। नीचे के खण्ड की दूकानें प्रातःकालीन नक्षत्रों के जैसी हो रही थीं; परन्तु ऊपर की दूकानों में अभी जाग्रति का श्रीगणेश ही हुआ था। अच्छा श्रीगणेश हुआ था! एक जगह से नूपुरों की झंकार आ रही थी, तो दूसरी जगह से मादक संगीत-लहरी। एक ओर से सुन्दरी का मधुर हास्यालाप सुन पड़ता था, तो दूसरी ओर से किसी मद्यप का असम्बद्ध कण्ठ-स्वर। मैं ने समझा कि इस पाप-वीथिका में अकेला मैं ही नहीं हूँ। मेरा साथ देने के लिए यहाँ एक-से-एक बढ़ कर मिल सकते हैं।

रामदेव रुक कर खड़ा हो गया। बोला—अब हम यथास्थान आ गये। देखो, इन्हीं सीढ़ियों से हम ऊपर के

स्वर्ग में पहुँचेंगे; परन्तु जरा ठहरो। पास की इस दूकान से पान ले लूँ। और हाँ, फूल भी। शुभस्थान में बिना 'पत्र-पुष्प' के जाना ठीक भी नहीं है?

पाजी की कुटिल हँसी देख कर मेरे हाड़ जल उठे। वह आगे बढ़ गया। मैं वहीं खड़ा रहा।

दूकान सामने थोड़ी ही दूर थी। दूकानदार की बात मेरे कान में स्पष्ट पहुँची, यद्यपि वह धीमे स्वर में ही बोल रहा था—ये बाबू नये जान पड़ते हैं। ज्यादा तो नहीं पी गये? वहाँ क्यों रुक गये, यहीं बुला लो।

दूकानदार ने गलत नहीं कहा था। मेरे पास दर्पण न होने पर भी मैं अपने मुहँ पर स्पष्ट देख रहा था, वह भाव, जो मद्यपों का ही अपना हो सकता है। यदि मैंने मद्य-पान न किया होता, किसी तरह का भी क्यों न हो वह—तो यहाँ आज आता ही क्यों? उधर से दृष्टि हटा कर मैं ने सीढ़ियों की ओर देखा। सोचने लगा—ये सीढ़ियाँ मुझे ऊपर ले जायँगी या किसी अतल गर्त्त में, जहाँ से कभी ऊपर उठ ही न सकूँगा? ऊपर के कमरे में समुज्वल प्रकाश उद्दीप्त हो रहा था। उसे भी देखा। इस प्रकाश में आज मेरे लिए कहाँ का अन्धकार छिपा हुआ है, यह मैं निश्चय नहीं कर सका।

मेरा माथा उत्तप्त हो उठा । मैं टोपी के भीतर हाथ डाल कर धीरे धीरे बालों पर फेरने लगा । एकाएक सनसनाता हुआ हवा का एक झोका आया । मेरी टोपी उड़ कर मेरे पैरों के पास आ गिरी ।

शिव ! शिव ! यह क्या हो गया ? मेरी यह टोपी वैसी नहीं है, जैसी सब कोई पहनते हैं । मेरी टोपी का एक इतिहास है । एक क्षण में कितनी ही बातें मेरे मस्तक में घूम गइ । जब शुरू शुरू में खादी का मुझे शौक हुआ था, उस समय मेरी माँ जीवित थीं । एक दिन जा कर मैं ने उनसे कहा—माँ, मैं यह चरखा लाया हूँ । जिस तरह तुम्हारे ही हाथ के भोजन से मेरी भूख शान्त होती है, उसी तरह तुम्हारे हाथ के वस्त्र से ही मेरे शरीर को सुख मिलेगा ! तुम सूत कात दो । मैं उसीका कपड़ा पहनूँगा । माँ के कते सूत का एक ही थान बन पाया कि वे लौकिक माया-ममता छोड़ कर अनन्त धाम को चली गईं । उस कपड़े का मूल्य आँकना मेरे लिए असम्भव था । बहुत सोच विचार कर मैं ने उसकी टोपियाँ ही टोपियाँ बनवा डालीं । निश्चय किया था—माता का प्रसाद हमेशा मस्तक पर धारण किये रहूँगा । इस वस्त्र के प्रत्येक तार में मैं माता के कर-स्पर्श का अनुभव किया करता था । हाय ! आज मैं ऐसा कुत्सित कृत्य करने पर उतारू हुआ हूँ

कि माता का वह प्रसाद मेरे मस्तक से खिसक कर पैरों पर लोटने लगा है। आज मुझसे जो अपराध हो गया है, उसका परिहार कहाँ है, मैं इस बात का निश्चय नहीं कर सका। हाय ! मस्तक से ऊँचा स्थान कहाँ पाऊँ, जहाँ माँ के उस प्रसाद को फिर से स्थापित करके, उसके पैरों पर गिरने की ग्लानि दूर कर सकूँ !

रामदेव हाथ में पान और माला लिये लौट कर बोला—अब चलो।

मैं ने नीचे से टोपी उठा ली थी। झाड़ कर उसे बार बार मस्तक पर लगा रहा था। रामदेव को देखते ही भभक उठा—बदमाश, यहाँ मुझे कहाँ ले आया ? अच्छा देखूँगा !

रामदेव के मुँह पर विस्मय की एक झलक देखता हुआ मैं पागल की तरह भाग खड़ा हुआ। उस गली को पार करके बहुत दूर मैं ने साँस ली। देखा, अन्धकार और भी घना हो गया है। आकाश में एक भी नक्षत्र नहीं दीख पड़ता था। परन्तु मैं ने समझा—मैं अनन्त प्रकाश के बीच में आ कर खड़ा हुआ हूँ।

फाल्गुन कृष्ण—'८६

बैल की बिक्री

कई साल से फसलें बिगड़ रही थीं। बादल समय पर पानी नहीं देते थे। खेती के पौधे अकाल वृद्ध हो कर असमय में ही मुरझा रहे थे। परन्तु महाजनों की फसल का हाल ऐसा न था। बादल ज्यों ज्यों खिंचते, उनकी खेती में त्यों त्यों नये नये अंकुर निकलते थे।

सेठ ज्वालाप्रसाद उन्हीं महाजनों में से थे। विधाता के वर से उनका धन अक्षय था। जिस किसान के पास पहुँच जाता, जीवन भर उसका साथ न छोड़ता। अपने स्वामी की तिजोरी में निरन्तर जा कर भी दरिद्र झोपड़ी की माया उससे छोड़ी न जाती थी!

मोहन बरसों से ज्वालाप्रसाद का ऋण चुकाने की चेष्टा में था। परन्तु चेष्टा कभी सफल न होती थी। मोहन का ऋण दरिद्र के वंश की तरह दिन पर दिन बढ़ता ही जाता था। इधर कुछ दिन से ज्वालाप्रसाद भी कुछ अधीर-से

हो उठे थे । रुपये अदा करने के लिए वे मोहन के यहाँ आदमी पर आदमी भेज रहे थे ।

समय की खराबी और महाजन की अधीरता के साथ मोहन को एक चिन्ता और थी । वह थी जवान लड़के, शिबू की निश्चिन्तता । उसे घर के काम-काज से सरोकार न था । बिलकुल ही न था, यह नहीं कहा जा सकता । भोजन करने के लिए यथा समय उसे घर आना ही पड़ता था । बाप, मजूरी के पैसे ला कर किस जगह रखता है, इसके ऊपर दृष्टि रखनी पड़ती थी । पता मिल जाने पर बीच बीच में उन्हें सफाई के हाथ से उड़ाना भी पड़ता था । ऐसे ही और बहुत काम थे । दो-चार बार उसे बैलगाड़ी किराये के लिए चलानी पड़ी थी । सम्भव है, यह बेगार आगे चल कर और अधिक करनी पड़ती । परन्तु हाल में ही यह सम्भावना भी असम्भव हो गई है । अचानक एक दिन दो-चार घंटे की बीमारी से हाल में ही उसका बैल चल बसा था । इस प्रकार ईश्वर ने उसके स्वच्छन्द विचरण के पथ में एक सुविधा और कर रक्खी थी । घर वालों के साथ उसका वही सम्बन्ध जान पड़ता था, जो खेती के साथ उन बादलों का होता है, जिनके दर्शन ही नहीं होते । यदि कभी होते भी हैं तो आये हुए धान्य को खेत में ही सड़ा देने भर के लिए ।

परन्तु बादल चाहे जैसी शत्रुता रक्खें खेती के लिए उनसे प्यारी वस्तु और कोई नहीं होती। मोहन भी शिबू का विचार इसी दृष्टि से करता था। सोचता था, अभी बच्चा है। हमेशा ऐसा ही थोड़े रहेगा। जब वह शिबू की कोई बात आई-गई कर जाता तब उसे अपने मृत पिता की याद आ जाती। उसने भी अपने पिता को कम नहीं खिझाया था। पिता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का सब से बड़ा साधन कदाचित् बच्चे को प्यार करना ही है! शिबू का यथेच्छाचार क्षमा करते समय प्रायः मोहन का हृदय गद्गद हो उठता था।

उस दिन कलेवा करके शिबू बाहर निकल रहा था। मोहन ने पीछे से कहा—लल्लू, आज मुझे एक जगह काम पर जाना है। बैल की सार साफ करके तुम उसे पानी पिला देना।

शिबू ने बाप की ओर मुड़ कर कहा—मुझसे यह बेगार न होगी। मुझे भी एक जगह जाना है।

मोहन जानता था कि काँच की तरह सीधी गरमी दिखा कर इसे झुकाने की इच्छा रखना मूर्खता है। विनती के स्वर में बोला—बेटा, मुझे काम है। नहीं तो तुमसे क्यों कहता? कौन बहुत देर का काम है।

शिबू उसी तरह अविचल कण्ठ से बोला—थोड़ी देर का काम हो या बहुत देर का, मुझे वाहियात कामों की फुर्सत नहीं है।

मोहन झुँझला पड़ा। क्रुद्ध हो कर बोला—कैसा है रे! बैल को पानी पिलाना वाहियात काम बताता है। किसानी न करेगा तो क्या बाबू बन कर डाकखाने में टिकट बेचेगा?

"ठीक तो कहता हूँ, नाराज क्यों होते हो? कितनी बार कहा—इसे बेच दो, अकेला बँधा बँधा खा रहा है। सार साफ करो, पानी पिलाओ, भूसा डालो। इधर से उधर बाँधो, उधर से इधर। मुझे यह अच्छा नहीं लगता। किसी काम आता हो तो बात भी है।"

"चुप रह! घर में जोड़ी न होती तो इतनी बातें बनाना न आता। बैल किसान के हाथ पैर होते हैं। एक हाथ टूट जाने पर कोई दूसरा भी कटा नहीं डालता। मैं इसका जोड़ मिलाने की फिक्र में हूँ; तू कहता है—बेच दो। दूर हो, जहाँ जाना हो चला जा। मैं सब कर लूँगा।"

"जा तो रहा ही हूँ। मैं कुछ ऐसा दुर्बल नहीं हूँ।" हँस कर कहता हुआ शिबू घर के बाहर हो गया। मोहन कुछ देर ज्यों का त्यों खड़ा रह कर, बड़बड़ाता हुआ उठा और आ कर

बैल को थपथपाने लगा । शिबू ने उसकी जो अवज्ञा की थी मानो उसकी क्षति-पूर्ति करने के लिए अपने हृदय का समस्त प्यार ढालने लगा।

उस दिन मोहन ने सार की सफाई और अच्छी तरह की। बैल को पानी पिलाने ले गया तो सोचा इसे नहला दूँ । उजड्ड लड़के ने बैल का जो अपमान किया था, उसे वह उसके अन्तस्तल तक से धो देना चाहता था । नहला चुकने पर अपने अँगोछे से पानी अँगौछा। बाँधने की रस्सी को भी पानी से धोना न भूला। सार में बाँध कर भूसा डाला। तब भी मन की ग्लानि दूर न हुई तो भीतर जा कर रोटी ले आया और टुकड़े टुकड़े करके उसे खिलाने लगा। वह कहा करता था कि जानवर अपनी बात समझा नहीं सकते, परन्तु बहुत-सी बातें आदमियों से अधिक समझते हैं। इसलिए वह अनुभव कर रहा था कि बैल उसके प्रेम को अच्छी तरह हृदयङ्गम कर रहा है।

इस तरह आज इतना समय लग गया, जितना लगना न चाहिए था। यह बात उसे उस समय मालूम हुई जब ज्वाला-प्रसाद के आदमी ने आ कर बाहर से पुकारा—मोहन है ?

मोहन सुन कर सन्न-सा खड़ा रह गया। उसे शिबू पर गुस्सा आया। अगर वह पाजी बैल का उधार कर देता तो

वह इस आदमी को घर थोड़े मिलता। शङ्कित मन से बाहर निकल कर बोला—कौन, रामधन भैया ! आओ तमाखू पीलो।

रामधन ने रुखाई से कहा—हमें फुर्सत नहीं है। इसी दम मेरे साथ चलो। तुम-जैसे छँटे हुए आसामी से भी किसी का पाला न पड़ा होगा। तुम्हारे पीछे फिरते-फिरते पैरों में छाले पड़ गये, परन्तु मालिक साहब के दर्शन ही नहीं होते।

सचमुच रामधन के पैरों में छाले पड़े हुए थे, इसीसे उसका मिजाज ठीक न था। परतु छाले पड़ने का कारण मोहन के पीछे फिरना नहीं था। एक चमार आसामी ने मुफ्त में जूते बना कर कुछ दिन के लिए उससे छुट्टी पाने का वचन लिया था। उन जूतों ने रामधन को चलने-फिरने से ही कुछ दिन के लिए छुट्टी दे कर अपने निर्माता का लेन-देन बराबर कर देना चाहा। रामधन इस समय उसी चमार को नये-नये शब्दों में याद करता चला आ रहा था। मोहन ने देखते ही समझ लिया, मामला ठीक नहीं है। चुपचाप भीतर से ला कर अँगोछा कन्धे पर डाला और उसके पीछे हो लिया।

रास्ते में मोहन ने फसल खराब होने की बात शुरू की। किसानों का गुजारा किस तरह हो रहा है, इस बात की ओर

संकेत किया। एक पैसे का सुभीता नहीं है, यह भी स्पष्टतः कहा। रामधन मुँह भारी किये हुए सुनता रहा। मानो उसके मुहँ में भी छाले पड़ गये थे। जब उत्तर देना नितान्त आवश्यक हो गया, तब संक्षेप में कह दिया—मालिक से कहना।

मोहन ने कहा—हमारे मालिक तो—

"चुप रह बदमाश!"—रामधन ने कहा। कहने का अभिप्राय यह था—मालिक मैं नहीं हूँ। उच्चारण-भंगी का अभिप्राय यह था—मालिक हूँ तो मैं।—"बड़ी देर की बक-बक लगाये है। चुका नहीं सकता तो कर्जा लिया ही किस लिए था?"

रामधन के साथ वह ज्वालाप्रसाद की कोठी पर जा पहुँचा।

ज्वालाप्रसाद ने अपने स्वर में संसार भर का प्रभुत्व भर कर कहा—वादे बहुत हो चुके। अब हमारे रुपये अदा कर दो, नहीं तो अच्छा न होगा!

मोहन ने कहा—मालिक की बातें! खाने को मिलता नहीं, रुपये कहाँ से आयें?

बातों ही बातों में ज्वालाप्रसाद की जीभ की ज्वाला बेहद बढ़ उठी। 'नमकहराम', 'सूअर' आदि जितनी उपा-

धियों से एक दम वह निरीह मण्डित हो उठा, उस सब के लिखने की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

मोहन घर न जा सका। रुपये अदा कर दो और चले जाओ, बस इतनी ही बात थी।

शिबू ने तीसरे पहर घर आ कर देखा—दद्दा नहीं हैं। मालूम हुआ—सबेरे ज्वालाप्रसाद के आदमी के साथ गये थे। दोपहर को रोटी खाने भी नहीं आये।

शिबू झपाटे के साथ घर से निकल कर ज्वालाप्रसाद के यहाँ जा पहुँचा। बाप को मुहँ सुखाये, पसीने-पसीने एक जगह बैठा देखा। बोला—चलो। आज रोटी नहीं खानी है?

आवाज सुन कर दूर से ज्वालाप्रसाद ने कहा—कौन है, शिबुआ? दाम लाया या यों ही लिवाने आ गया।

शिबू ने अपने कर्कश कण्ठ को और भी कर्कश करके कहा—तुम अपनी रुपट्टी लोगे या किसीकी जान? अरे, कुछ तो दया होती। बूढ़े ने सबेरे से पानी तक नहीं पिया। तुम कम-से-कम चार दफे भोजन ठूँस चुके होगे।

मोहन लड़के का ढँग देख कर घबरा उठा। बोला—अरे ढोर, कुछ तो समझ की बात कर। किससे किस तरह बोलना चाहिए, आज तक तुझे यह शऊर भी न आया।

"न आने दो। चलो, उठो। मैं तुम्हें यहाँ कसाई की गाय की तरह न मरने दूँगा। रामपुर की हाट में सोमवार को बैल बेच कर उनकी कौड़ी-पाई चुका दूँगा।"—कह कर शिबू ने बाप का हाथ पकड़ा और उसे झकझोरता हुआ साथ ले गया।

ज्वालाप्रसाद हतबुद्धि हो कर ज्यों के त्यों बैठे रहे। उन्होंने शिबू के जैसा निर्भय आदमी देखा न था। उनके मुहँ पर ही उन्हें कसाई बना गया! गुस्सा की अपेक्षा उन्हें डर ही अधिक मालूम हुआ। वे भी उसी हाट में रामपुर जा रहे थे। आजकल डाकुओं का बड़ा जोर था। यह शिबुआ भी तो कहीं डाकुओं में नहीं है? कैसा ऊँचा-पूरा हृष्ट-पुष्ट पट्ठा है! बोलने में किसी का डर नहीं; चलने में किसी का बन्धन नहीं। दिन भर फिर किसी काम में ज्वालाप्रसाद का मन नहीं लगा। बार बार उसका तेज-दृप्त चेहरा उन्हें याद आता रहा।

दो दिन में ही ऐसा जान पड़ने लगा—मानो मोहन बहुत दिन का बीमार हो। दिन भर वह बैल के विषय में ही सोचा करता। रात को उठ कर कई बार बैल के पास जाता। दिन में और लोगों के सामने अपना प्रेम पूर्ण रूप से प्रकट करते हुए उसे संकोच होता था। रात के एकान्त में उसे अवसर

मिलता। बैल के गले से लिपट कर प्रायः वह आँसू बहाने लगता। यदि कभी शिबू उसका यह आचरण देख लेता तो उसे ऐसा जान पड़ता मानो वह कोई अपराध कर रहा हो।

हाट जाने के एक दिन पहले उसने शिबू से कहा—एक बात बेटा, मेरी मानना। बैल किसी भले आदमी को देना जो उसे अच्छी तरह रक्खे। दो-चार रुपये कम मिलें तो ख्याल न करना।

शिबू बिगड़ कर बोला—तुम्हारी तो बुद्धि बिगड़ गई है। जब देखो, 'बैल' 'बैल' की रट लगाये रहते हो। मैं मर जाऊँ तो भी शायद तुम्हें बैल के जितना रंज न हो। बैल जिये या भाड़ में जाय, मुझे कोई मतलब नहीं। जो ज्यादा दाम देगा मैं उसीको बेच दूँगा। हमारा ख्याल कौन रखता है? मैं भी किसी का न रक्खूँगा। उस कसाई के रुपये उसके मत्थे मार दूँ, मैं तो इतना ही चाहता हूँ। बस।

मोहन चुपचाप सुनता रहा। थोड़ी देर बाद एक गहरी साँस ले कर वहाँ से हट गया।

जिस समय बैल की रस्सी खोल कर शिबू हाट के लिए जा रहा था, वहाँ मोहन न था। किसी काम के लिए जाने की बात कह कर वह पहले ही बाहर चला गया था।

❀ ❀ ❀

बैल बेच कर शिबू घर लौटा आ रहा था। रुपये उसको अंटी में थे। तो भी आज उसकी चाल में वह तेजी नहीं थी, जो जाते समय थी। न जानें कितनी बातें उसके भीतर आ-जा रही थीं। बैल के बिना उसे सूना-सूना मालूम हो रहा था। आज के पहले वह यह बात किसी तरह न मानता कि उसके मन में भी उस क्षुद्र प्राणी के लिए प्रेम था। मनुष्य अपने आपके विषय में जितना अज्ञान है, कदाचित् उतना और किसी विषय में नहीं है। बार बार उसे बैल की सूरत याद आती। उसके ध्यान में आता, मानो बिदा होते समय बैल भी उदास हो गया था। उसकी आँखों में आँसू छलक आये थे! बैल का विचार दूर करता तो बाप का सूखा हुआ चेहरा सामने आ जाता। बैल और बाप मानो एक ही चित्र के दो रुख थे। लौट-फिर कर एक के बाद दूसरा उसके सामने आ-आ जाता था। आः उसका बाप इस बैल को कितना प्यार करता था! उसे अनुभव होने लगा कि वह बैल उसका भाई ही था। एक ही पिता के वात्सल्य-रस से दोनों पुष्ट हुए थे। जो बाप जानवर के लिए इतना प्रेमातुर हो सकता है, वह उसके लिए न जाने क्या करेगा? सोचते सोचते उसका हृदय पिता के लिए आर्द्र हो उठा। हाय! वह अब तक अपने ऐसे स्नेहशील पिता को भी न पहचान

सका। उसके हृदय का औद्धत्य आज अपने आप पराजित हो गया था।

घने वन की छाती पर, पत्थर की पक्की सड़क, दोनों ओर के वृक्षों की छाया का उपभोग करती हुई, निर्जन और बस्ती की परवा न करके, बहुत दूर तक चली गई थी। दूर दूर तक आदमी का चिन्ह तक दिखाई न देता था। बीच बीच में कुछ हिरन छलाँगें मारते हुए सड़क पार कर जाते थे। अचानक शिबू ने देखा—एक जगह बहुत-सी बैल-गाड़ियाँ ढिली हुई हैं। एक ओर की निर्धनता के आधार पर ही दूसरी ओर की सघनता अवलम्बित है, मानो यही दिखाने के लिए ऊँची सड़क के दोनों ओर लगातार नीची खन्दकें चली गई थीं। दो-तीन सौ आदमी उन खन्दियों में चुपचाप दूर तक श्रेणीबद्ध बैठे हुए थे। शिबू ने समझा, सड़क पर पुलिस के आदमी हैं। कुछ वसूल कर लेने के लिए इन आदमियों को परेशान कर रहे हैं। पुलिस का विचार आते ही उसका गर्वित हृदय विद्रोही हो उठा। विचारों की शृङ्खला छिन्न-भिन्न हो गई। वह तेजी से चलने लगा।

"कौन है, खबरदार, खड़ा रह!"

शिबू ने देखा—पुलिस के सिपाहियों की पोशाक में बन्दूकें लिये हुए पाँच आदमी हैं। मुहँ कपड़े से इस तरह

बाँधे हुए हैं कि सूरत साफ दिखाई न दे सके। बीच सड़क पर एक कपड़ा बिछा हुआ है। उस पर रुपये पैसे और गहनों का ढेर लगा है। शिबू को समझने में देर नहीं लगी—डाकू हैं, सिपाही नहीं। दिन-दहाड़े यहाँ लूट हो रही है। सड़क के नीचे खन्दियों में जो लोग बैठे हैं वे लुट चुके हैं। डाकुओं ने धन के साथ मानों उनकी गति और वाणी भी अपहृत कर ली है।

हाँ तो,—एक डाकू फिर से कड़क कर बोला—कौन है, चला ही आ रहा है? खड़ा हो जा। रख दे जो कुछ तेरे पास हो।

शिबू ने देखा—अब रुपये जाते हैं। उसे रुपयों का मोह कभी न था। रुपया-पैसा उड़ाना ही उसका काम था। परन्तु ये रुपये—ये रुपये किस तरह आये हैं, यह बात वह अभी अभी अनुभव करता आ रहा था। एक क्षण के एक हिस्से में उसे बाप का सूखा हुआ चेहरा याद आया और दूसरे क्षण उस महाजन का, जिसने रुपये चुकाने के लिए उन्हें तीसरे पहर तक भूखा-प्यासा रोक रक्खा था। ज्यादा विचार करने का अवसर न था। वह छाती तान कर खड़ा हो गया। बोला—मैं रुपये नहीं दूँगा।

बोलने वाला डाकू शिबू का सुदृढ़ कण्ठ-स्वर सुन कर स्तम्भित हो गया। इतने आदमी अभी अभी लूटे गये हैं; इस तरह तो कोई नहीं कह सका।

दूसरा डाकू बन्दूक का कुन्दा मारने के लिए उस पर झपटा। शिबू ने बन्दूक के कुन्दे को इस तरह पकड़ लिया, जिस तरह सँपेरे साँप का फन पकड़ लेते हैं। अपने को आगे ठेलता हुआ वह बोला—तुम मुझे मार सकते हो, परन्तु रुपये नहीं छीन सकते। ये रुपये मेरे बाप के कलेजे के खून में तर हैं। मेरे जीते-जी महाजन के सिवा इन्हें कोई नहीं ले सकता। यह कह कर शिबू ने अपने पूरे वेग के साथ निकल जाना चाहा। तब तक पाँचों डाकुओं ने घेर कर उसे पकड़ लिया। वह उच्च कण्ठ से फिर चीत्कार कर उठा—छोड़ दो। मैं रुपया नहीं दूँगा।

शिबू का चीत्कार सुन कर लुटे हुए लोग खन्दियों में उठ कर खड़े हो गये। देखने लगे—कौन है, जो प्रत्यक्ष मौत का सामना कर रहा है।

डाकुओं ने एक दम देखा—वे केवल पाँच हैं और दो-तीन सौ आदमी उनके विपक्ष में उठ खड़े हुए हैं। उन्हें विस्मय करने का भी अवसर न मिला कि उन्होंने बन्दूक के बल पर एक-एक दो-दो करके इतने आदमी कैसे लूट लिये हैं। यदि ये इसी उजड्ड की तरह बिगड़ खड़े हों तो कौन इनका सामना कर सकता है? भय और साहस संक्रामक वस्तुएँ हैं। शिबू का साहस देख कर उधर लुटे हुए लोगों का भय भी दूर हो

रहा था। देखने तक का समय न था, परन्तु डाकुओं ने स्पष्ट देख लिया—एक साथ सब लोगों के भाव बदल गये हैं। उन लोगों में से कुछ खन्दियाँ पार करके सड़क तक भी नहीं आ सके कि डाकू बन्दूकें हाथ में लिये हुए द्रुत गति से सड़क के नीचे उतर गये। लूट का माल उठाने में समय नष्ट करने की अपेक्षा अपने प्राण ले कर भागना ही उन्हें अधिक मूल्यवान प्रतीत हुआ। थोड़ी ही देर में वे लोग आँखों से ओझल हो गये।

लोगों ने आ कर शिबू को चारों ओर से घेर लिया। अधिकांश स्त्री-बच्चे और पुरुष अब तक भय के मारे काँप रहे थे। रोग की तरह दूर हो जाने पर भी भय शरीर को कुछ समय के लिए निःशक्त-सा कर रखता है। स्त्रियाँ शिबू को आशीर्वाद दे रही थीं—बेटा, तेरी हजारी उम्र हो! परन्तु शिबू इस समय भी अपने आपे में न था। वह सोच रहा था कि इनमें अधिकांश ऐसे आदमी हैं, जो रुपये के लिए बुरे से बुरा काम कर सकते हैं। रुपया ही इनका सब कुछ है। उसी रुपये को इन्होंने इस प्रकार कैसे लुट जाने दिया?

भीड़ में से एक आदमी निकल कर शिबू के पास आया। बोला—कौन हैं, शिबू माते? तुमने आज इतने आदमियों को—

शिबू ने देखा—ज्वालाप्रसाद है । शरीर पर धोती के सिवा और कोई वस्त्र नहीं । डाकुओं ने रुपये-पैसे के साथ उसके कपड़े भी उतरवा कर रखवा लिये थे । उसे देखते ही उसका मुँह घृणा से विकृत हो उठा । अन्टी से रुपये निकाल कर उसने कहा—बड़ी बात, शिबू माते तुम्हें आज यहीं मिल गये ! लो, अपने रुपये चुकते कर लो । अब लुट जाँय तो मैं जिम्मेदार नहीं ।

फाल्गुन कृष्ण १३—१९८९

त्याग

राष्ट्रपति की गिरफ्तारी पर स्थानीय राष्ट्र-सभा ने हड़ताल की घोषणा की थी। इस छोर से उस छोर तक सारा बाजार बन्द था। जान पड़ता था, मानो किसी योगी ने आत्म-साक्षात्कार के लिए समाधि चढ़ा ली हो।

प्रदर्शिनी देखने के लिए हृदय में जो आग्रह होता है, बन्द बाजार देखने के लिए भी उससे कम नहीं होता; परन्तु मैं घर से न निकल सका। जयदेव कल से ज्वर में पड़ा था। आज वह शोर-गुल करके, इधर से उधर, उधर से इधर दौड़ कर, पीछे से अचानक मेरी पीठ पर चढ़ कर, और भी अनेक नवाविष्कृत युक्तियों से मेरे पढ़ने-लिखने में व्याघात नहीं पहुँचा रहा था। जिस तरह घरघराहट के साथ चलती हुई रेलगाड़ी के यात्री की नींद, गाड़ी रुकते ही उचट जाती है, उसी तरह इस शान्ति में मेरे मन की शान्ति भङ्ग हो रही थी।

दोपहर के समय वह अचानक फुर्ती के साथ उठ कर खाट पर बैठ गया। बोला—मैं भीतर जाऊँगा।

"ऐसे में घूमना-फिरना अच्छा नहीं बेटा!"—कह कर मैं ने उसे अपनी गोद में बिठा लिया। सिर पर हाथ रख कर देखा, ज्वर उतर गया है। उसने मेरी गोद से उठने का प्रयत्न करते हुए कहा—छोटी दाख!

"छोटी दाख खाओगे?"

"हाँ!"

घर में छोटी दाख थी नहीं। भजुआ को बुला कर दो आने की किशमिश ले आने के लिए कहा। वह विरक्ति प्रकट करते हुए बोला—मालिक, आज हड़ताल है। जब से गाँधी बाबा यहाँ हो गये हैं, हर दूसरे दिन बाजार बन्द रहने लगा है। पहले तो ऐसा नहीं होता था।

नौकर की बात सुन कर मुझे हँसी आ गई। कुछ दिन पहले इन प्रान्तों की यात्रा करते हुए बापू हमारे गाँव में भी पधारे थे। उसके बाद ही सत्याग्रह-संग्राम छिड़ गया और हड़ताल रोज की बात हो उठी। यह नौकर देहात से नया आया था; इसलिए मेरे यहाँ रह कर भी यथार्थ स्थिति से परिचित न था। परन्तु, इस समय उसे अच्छी तरह समझाने का अवसर मेरे पास न था। बच्चे को समझाते हुए मैं ने

कहा—बेटा, आज बाजार बन्द है । दाख कल सबेरे मँगा-दूँगा । इस समय और कुछ खालो ।

जयदेव ने सिर हिला कर संक्षेप में कहा—दाख !

मैं ने उसे बहलाने के लिए कहा—अच्छा, भीतर से लड्डू मँगाये देता हूँ । बहुत अच्छे, बहुत मीठे !

जयदेव ने विज्ञ की तरह सिर हिलाते हुए कहा—नहीं, मिठाई से दाँत खराब हो जाते हैं, दाख अच्छी होती है ।

उसकी बात सुन कर मैं एक दम जोर से हँस पड़ा । दाँत खराब हो जाने के डर से उसने आज तक कभी मिष्ठान्न का अनादर नहीं किया था ।

और कुछ लेने के लिए मैं उसे किसी प्रकार सम्मत न कर सका । कदाचित् दुष्प्राप्य वस्तु ही अधिक स्वादिष्ट होती है । इस कठोर सत्याग्रह के लिए मै भूखे बच्चे पर अप्रसन्न भी न हो सका । विवश हो कर बाजार के लिए उठ खड़ा हुआ ।

एक मित्र दूकानदार को तलाश करके दूकान खुलवाई, तब कहीं बड़ी मुश्किल से दाखें मिलीं । उन्होंने दाम नहीं लिये । हड़ताल के कारण उस दिन कोई चीज बेची नहीं जा सकती थी । मित्र के एहसान के साथ जब मैं दाखें ले कर घर पहुँचा, तब जयदेव अपनी माँ की गोद में बैठा-बैठा रोटी

खा रहा था । दाखें देख कर बोला—मैं अब नहीं खाऊँगा, और किसी को दे दो ।

उसकी उदारता से विस्मित हो कर मैं ने कहा—मैं तो बड़ी मुश्किल से लाया हूँ; बहुत अच्छी, बिलकुल साफ । अब क्यों नहीं खाते ?

उसने कहा—नहीं, आज दाख नहीं खाई जाती। आज गाँधी जी ने हड़ताल कराई है ।

मैं ने विस्मिय प्रकट करते हुए कहा—अच्छा, ऐसी बात है ! गाँधी जी नहीं, हम तो उन्हें बापू कहते हैं ।

उसने 'बापू' शब्द पर जोर देते हुए कहा—वे तुम्हारे बापू हैं ?

मैं ने हँस कर कहा—हाँ वे हमारे, तुम्हारे और सबके बापू हैं । तुम उन्हें जानते हो ?

जयदेव ने माँ की गोद में बैठे-बैठे कहा—मैं सब जानता हूँ । उस दिन वे यहाँ आये थे । झंडियाँ लगाई गई थीं, बन्दनवार बाँधे गये थे और बहुत आदमी इकट्ठे हुए थे । उन्हें थैली दी गई थी ।

मैं ने इस परीक्षा में उत्तीर्ण पा कर कहा—तो ये दाखें मैं मुन्नी को दिये देता हूँ ।

उसने दृढ़ता से कहा—हाँ, मुन्नी को ही दे दो । यह

नासमझ है, मैं तो सब समझता हूँ। आज कोई चीज बाजार से मँगाना ठीक नहीं है। इन्हें मैं न खाऊँगा।

ये द्राखे उसने नहीं ही लीं।

कोटर और कुटीर

कोटर

दोपहरी का समय था। सूर्य अग्नि-शलाकाओं से पृथ्वी का शरीर दग्ध कर रहा था। वृक्षों के पत्ते निस्पन्द थे। मानों किसी और भयंकर काण्ड की आशंका से साँस-सी साधे खड़े थे। इसी समय अपने छोटे-से कोटर के भीतर बैठे हुए चातक-पुत्र ने कहा—पिता!

बाहर की सहज स्निग्ध वनस्थली के वर्तमान रूखेपन की तरह ही वह स्वर कुछ नीरस था। चातक ने अपनी चोंच कुमार की पीठ पर फेरते हुए प्यार से कहा—क्या है बेटा?

"है और क्या? प्यास के मारे चोंच तक प्राण आगये हैं।"

"बेटा, अधीर न हो। समय सदा एक-सा नहीं रहता।"

"तो यही तो मैं भी कहता हूँ—समय सदा एक-सा नहीं रहता। पुरानी बातें पुराने समय के लिए थीं। आप अब भी उन्हें इस तरह छाती से चिपकाये हुए हैं, जिस तरह बानरी

मरे बच्चे को चिपकाये रहती है। घनश्याम की बाट आप जोहते रहिए। अब मुझसे यह नहीं सध सकता।"

"घनश्याम के सिवा हम और किसी का जल ग्रहण नहीं करते। यही हमारे कुल का व्रत है। इस व्रत के कारण अपने गोत्र में न तो किसी की मृत्यु हुई और न कोई दूसरा अनर्थ।"

"आप कहते हैं,—कोई अनर्थ नहीं हुआ; मैं कहता हूँ, प्यास की इस यन्त्रणा से बढ़ कर और अनर्थ क्या होगा। जहाँ से भी होगा मैं जल ग्रहण करूँगा ही।"

चातक सिहर कर पंख फड़फड़ाने लगा। मानो उसने उन अश्रव्य वचनों और कानों के बीच में कोलाहल की परिखा-सी खड़ी कर देनी चाही! थोड़ी देर तक चुप रह कर वह बोला—बेटा, धैर्य रख। अपने इस व्रत के कारण ही पानी बरसता है और धरती-माता की गोद हरी-भरी होती है। यह व्रत इस तरह नष्ट कर देने की वस्तु नहीं।

उतावले लड़के ने कहा—व्रत पालन करते हुए इतने दिन तो हो गये, पानी का कहीं चिन्ह तक नहीं है। गरमी ऐसी पड़ रही है कि धरती के नदी-नाले सब सूख गये। फिर सूर्य के और निकट रहने वाले आकाश के मेघों में पानी टिक ही कैसे सकता है?

"बेटा, पृथ्वी का यह निर्जल उपवास है। इसी पुण्य से उसे जीवन-दान मिलेगा। भोजन का पूरा स्वाद और पूरी तृप्ति पाने के लिए थोड़ी-सी क्षुधा सहन करना अनिवार्य ही नहीं आवश्यक भी है।"

"पिता जी, मैं थोड़ी-सी क्षुधा से नहीं डरता। परन्तु यह भी नहीं चाहता कि क्षुधा ही क्षुधा सहन करता रहूँ। मैं ऐसा व्रत व्यर्थ समझता हूँ। देवताओं का अभिशाप ले कर भी मैं इसे तोड़ूँगा। घनश्याम को भी तो सोचना चाहिए था कि उनके बिना किसी के प्राण निकल रहे हैं। आदमी ने मेघों पर अविश्वास करके कृषि की रक्षा के लिए नहर, तालाब और कुओं का बन्दोबस्त कर लिया है। कृषि ने आपकी तरह सिर नहीं हिलाया कि मैं तो घनश्याम के सिवा और किसी का जल नहीं छुऊँगी। हमीं क्यों इस तरह कष्ट सहें। आप चाहे मुझे रक्खें या छोड़ें, मैं यह झंझट न मानूँगा।

चातक ने देखा—मामला बेढब हुआ चाहता है। यह इस तरह न मानेगा। कहा—यह बताओ, तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे?

चातक-पुत्र चुप। उसने अभी तक इस बात पर विचार ही नहीं किया था। वह सोचता था जिस प्रकार लाखों जीव-

जन्तु जल पीते हैं, उसी प्रकार मैं भी पिऊँगा । परन्तु वह प्रकार कैसा है, यह उसकी समझ में न आया था ।

लड़के को चुप देख कर पिता ने समझा—कमजोरी यहीं है । वह जानता था कि कमजोरी के ऊपर से ही आक्रमण करना विजय की पहली सीढ़ी है । बोला—चुप कैसे रह गये ? बताओ, तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे ?

हिचकिचा कर,—अपनी बात स्वयं ही खण्ड खण्ड करते हुए,—लड़के ने कहा—जहाँ से और दूसरे ग्रहण करते हैं, वहीं से मैं भी करूँगा ।

पिता ने कहा—पड़ोस में वह पोखरी है । अनेक पशु-पक्षी और आदमी भी वहाँ जल पीते हैं । तुम वहाँ जल पी सकोगे ? बोलो है हिम्मत ?

चातक-पुत्र को उस पोखरी के स्मरण से ही फुरहरी आ गई । अह, उसमें कितनी गन्दगी है ! पत्ते, सूखी डंठलें आदि गिर गिर कर उसमें सड़ती रहती हैं । कीड़े कुलबुलाते हुए उसमें साफ दिखाई दे सकते हैं । लोग उसमें कपड़े निखारने आते हैं, या गन्दे करने; कई बार सोचने पर भी वह समझ न सका था । एक बार एक आदमी को अंजुली से पानी पीते देख उसने पिता से कहा था—देखो पिता जी, ये कैसे घृणित जीव हैं । अवश्य ही उसने अपने

व्रत का जिक्र उस समय नहीं किया था, परन्तु उसके मन में उसीका गर्व छलक उठा था। अब इस समय वह पिता से कैसे कहे कि मैं उस पोखरी का पानी पिऊँगा ?

चातक बोला—बेटा, अभी तुम नासमझ हो। चाहे जहाँ से पानी ग्रहण करना इस समय तुम आसान समझ रहे हो। परन्तु जब इसके लिए बाहर निकलोगे तब तुम्हें मालूम पड़ेगा। हमारी प्यास के साथ करोड़ों की प्यास है और तृप्ति के साथ करोड़ों की तृप्ति। तुझ से अकेले तृप्त होते कैसे बनेगा ?

चातक-पुत्र इस समय अपने हठ को पुष्ट करने वाली कोई युक्ति सोच रहा था। पिता की बात बिना सुने वह बोल उठा—मैं गंगा-जल ग्रहण करूँगा।

चातक ने कहा—गंगा जी तो यहाँ से पाँच दिन की उड़ान पर हैं। तू नहीं मानता तो जा। परन्तु यदि तू ने और कहीं एक बूँद भी ली तो हमें मुहँ न दिखाना।

चातक-पुत्र प्रणाम करके फर्र-से उड़ गया।

कुटीर

बुद्धन का कच्चा खपरैल का घर था। छोटी छोटी दो कोठरियाँ, फिर उन्हींके अनुरूप आँगन और उसके आगे पौर। पुराना छप्पर नीचे झुक कर घर के भीतर आश्रय लेने की बात सोच रहा था। जीर्ण-शीर्ण दीवारें रोशनदान न होने की साध दरारों के 'दस्तक' से पूरी किया चाहती थीं!

उस घर में और कुछ हो या न हो, आँगन के बीच, चातक-पुत्र के विश्राम करने योग्य नीम का एक वृक्ष था। तीसरी उड़ान की थकान मिटाने के लिए वह उसी पर उतरा।

नीम की स्निग्धता तथा सघनता ने चातकपुत्र को अपने निजी सहकार की याद दिला दी। विश्राम पा कर भी उसके जी में एक प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न हो गई। पकी निबौरी की तरह उस वेदना में भी कुछ माधुर्य था!

नीचे वृक्ष की छाया में बुद्धन लेटा हुआ था। अवस्था उसकी पचास के ऊपर थी। फिर भी अभी कुछ दिन पहले तक, उसके पैरों में जीवन-यात्रा की इतनी ही मंजिल तय

करने योग्य शक्ति और मालूम होती थी। एक दिन एकाएक पक्षाघात ने उसे अचल कर दिया। जीवन और मृत्यु ने आपस में सुलह करके मानो आधे आधे शरीर का बटवारा कर लिया! स्त्री पहले ही गत हो चुकी थी। घर में १५-१६ वर्ष का एक मात्र पुत्र, गोकुल ही अवशिष्ट था। उसीके सहारे उसके दिन पूरे हो रहे थे।

गोकुल एक जगह काम पर जाता था। काम करके प्रति दिन सन्ध्या समय तक लौट आता था। आज अभी तक नहीं आया था, इसलिए बुद्धन उसके लिए छटपटा रहा था। ऊपर आकाश में तारे छिटक आये थे। इधर-उधर चारों ओर सन्नाटा था और घर में अकेला बुद्धन। यद्यपि उसमें खाट के नीचे तक उतरने की शक्ति नहीं थी, तो भी उसका मन न जानें कहाँ कहाँ चौकड़ी भर रहा था। गोकुल सवेरे थोड़े-से चने खा कर काम पर गया था। बुद्धन के लिए भी थोड़े-से चने और पीने का पानी यथा-स्थान रख गया था। आज खाने के लिए घर में और कुछ था ही नहीं। कह गया था, शाम को मजूरी के पैसों का आटा ला कर रोटी बनाऊँगा। परन्तु आज वह अभी तक नहीं आया था। अनेक आशंकाओं से बुद्धन का मन चंचल हो उठा। जो समय आनन्द की स्निग्ध-शीतल-छाया में शीतकाल के दिन की तरह, मालूम

भी नहीं होने पाता और निकल जाता है, वही दुःख की दाहक ज्वाला में निदाघ के दीर्घ दिनों की भाँति अकाट्य हो उठता है। रात बहुत नहीं बीती थी, परन्तु बुद्धन को मालूम हो रहा था कि बरसों का समय हो गया। बार बार अपने कान खड़े करके रात के उस सन्नाटे में वह गोकुल के पद-शब्द सुनने का प्रयत्न कर रहा था।

बड़ी देर बाद उसकी प्रतीक्षा सफल हुई। किवाड़ खुलने की आवाज सुन कर वह चौंका। वास्तव में यह गोकुल ही था। उसने कहा—कौन, गोकुल!—बेटा, आज बड़ी देर लगाई।

गोकुल धीरे से पिता की खाट के पास आ कर रोने लगा।

बुद्धन ने घबरा कर पूछा—क्या हुआ, बेटा; क्या हुआ?

"आज मजूरी नहीं मिली। अब कैसे चलेगा?"

"ऐं मजूरी नहीं मिली! फिर इतनी देर क्यों हुई?"

प्रकृतिस्थ हो कर गोकुल ने उसे अपना हाल सुनाया।

❀ ❀ ❀

सबेरे घर से निकलते ही गोकुल को सामने खाली घड़ा मिला। देख कर उसके पैर ढीले पड़ गये। सोचा—आज भगवान ही मालिक है। काम पर पहुँच कर उसने देखा—

ओवरसियर साहब आज कुछ ज्यादा खफा हैं । इंजीनियर साहब काम देखने आये थे । जान पड़ता है, काम देखने की जगह वे ओवरसियर साहब को ही देख गये थे । अन्याय का यह बोझा उन्होंने दिन भर मजदूरों पर अच्छी तरह उतारा । शाम को मजदूरी देने के समय भी साफ इंकार कर दिया—आज दाम नहीं दिये जायँगे । उस अदालत के फैसले की तरह, जिसकी कहीं अपील नहीं हो सकती, ओवरसियर साहब का हुक्म मान कर मजदूर अपने अपने घर लौट गये।

गोकुल लौटा चला आ रहा था कि एक जगह उसे रास्ते में कुछ पड़ा हुआ दिखाई दिया । पास पहुँचने पर मालूम हुआ, रुपये-पैसे रखने का बटुआ है । उठा कर देखा तो काफी वजनदार था । वह सोच में पड़ गया—इसे खोल कर देखना चाहिए या नहीं । न देखने का निश्चय ही उसे दृढ़ करना पड़ा । कौतूहल-निवृत्ति करने के लिए उसने उसे टटोला । टटोलने पर मालूम हुआ—रुपये हैं और बहुत कम भी नहीं । थोड़ी देर तक वह वहीं खड़ा खड़ा सोचता रहा—इसका क्या करूँ ? उसके पिता ने उसे अब तक जो कुछ सिखाया था, उसने उसे इस बात के सोचने का अवसर ही नहीं दिया कि बटुआ अपने पास रख ले । वह यही सोच रहा था कि यह बटुआ किसका है ? जब उसे मालूम होगा कि उसका बटुआ

खो गया है तब उसकी क्या दशा होगी ? रुपये-पैसे का क्या मूल्य है; यह बात वह कुछ दिनों में ही अच्छी तरह जान गया था। उस व्यक्ति की उस समय की दशा का विचार करके वह इस प्रकार सिहर उठा मानो उसीका बटुआ खो गया हो !

उसे ध्यान आया कि कुछ दूर उसने एक गाड़ी जाती हुई देखी थी। उस पर कान में मोती-पिरोई सोने की बाली पहने हुए एक महते बैठे थे। सम्भव है यह बटुआ उन्हींका हो। और किसीके पास इतने रुपये होना आसान भी नहीं है। यहाँ कुएँ पर गाड़ी रोक कर उन्होंने पानी पिया होगा और आग जला कर तमाखू भरी होगी। एक जगह आग जलाई जाने के चिन्ह मौजूद थे। उसने इस बात का विचार ही नहीं किया कि गाड़ी तक जाने में कितना समय लगेगा और वह दौड़ पड़ा।

लगभग आधे घण्टे के परिश्रम से वह उस गाड़ी के पास पहुँच गया। गोकुल ने हाँफते-हाँफते पूछा—महते, तुम्हारा कुछ खो तो नहीं गया ?

महते ने चौंक कर गाड़ी में इधर-उधर देखा। साथ ही जेब पर हाथ रक्खा तो पाषाण की तरह निस्पन्द हो गये। गोकुल से महते की यह अवस्था देखी न गई। वह बटुआ दिखा कर उसने झट से प्रश्न कर दिया—यह तुम्हारा है ?

एक क्षण में ही जीवन और मृत्यु का द्वन्द्व-सा हो गया। मानो बिजली के खटके से प्रकाश बुझा कर घर फिर से उद्दीप्त कर दिया गया हो ! महते ने कहा—भगवान तुझे सुखी रक्खें भैया ! इसे कहाँ पाया ?

"रास्ते में पड़ा था। इसमें कितने रुपये है ?"

महते ने हिसाब लगा कर बताया—बयालीस रुपये, एक अठन्नी, एक घिसी हुई बेकाम दुअन्नी, दस या बारह आने पैसे, एक कागज, एक चाँदी का छल्ला—

गोकुल ने बटुआ खोल कर रुपये गिने। सब ठीक निकले। बटुआ हाथ में ले कर महते की आँखों में आँसू भर आये। बोले—इतनी बड़ी रकम पा कर भी जिसे उसका लोभ न हो, भैया, मैं ने ऐसा आदमी आज तक नहीं देखा। यदि किसी और को यह बटुआ मिलता तो मेरा मरण हो जाता। मेरा रोम रोम असीस रहा है, भगवान तुम्हें सदा सुखी रक्खें—। यह कह कर महते ने बटुए से निकाल कर गोकुल को दो रुपये देने चाहे। उसने सिर हिला कर कहा—मेरे बप्पा ने किसी से भीख लेने के लिए मुझे मना कर दिया है। मुफ्त के ये रुपये मैं न लूँगा।

महते के सजल नेत्र विस्मय से खुले ही रह गये। गोकुल थोड़ी ही देर में उस अन्धकार में उनकी आँखों से ओझल हो गया।

❀ ❀ ❀

सब वृत्तान्त सुना कर गोकुल अपराधी की भाँति खड़ा हो कर बोला—बप्पा, आज खाने के लिए कुछ नहीं है। महते से कुछ उधार माँग लाता तो सब ठीक हो जाता। मेरी समझ में यह बात उस समय आई ही नहीं।

बुद्धन की आँखों से झर झर आँसू झरने लगे। गोकुल को अपनी दोनों भुजाओं में भर कर उसने छाती से लगा लिया। आनन्दातिरेक ने उसका कण्ठावरोध कर दिया। उसे मालूम हुआ कि उसके क्षुधित और निर्जीव शरीर में प्राणों का संचार हो गया है। उसे जिस तृप्ति का अनुभव होने लगा वह दो एक दिन की तो बात ही क्या जीवन भर की क्षुधा शान्त कर सकती है। धन सम्पत्ति, मान और बड़ाई सब उसे तुच्छ-से प्रतीत होने लगे। मानो एकाएक उसके सब दुःख-रोग दूर हो गये हैं। अब वह बिना किसी चिन्ता के मृत्यु का आलिङ्गन इसी क्षण कर सकता है।

बड़ी देर में अपने को सँभाल कर बुद्धन बोला—अच्छा ही किया बेटा, जो तू महते से रुपये उधार नहीं लाया। वहाँ

उधार माँगना भी एक तरह का माँगना ही होता। भगवान ने मुझे ऐसी बुद्धि दी है, मैं तो यही देख कर निहाल हो गया। दो-एक दिन की भूख हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। जिस तरह चातक अपने प्राण दे कर भी मेघ के सिवा किसी दूसरे का जल लेने का व्रत नहीं तोड़ता, उसी तरह तू भी ईमानदारी की टेक न छोड़ना। मुझे मालूम हो गया यह तू मुझसे भी अच्छी तरह जानता है। फिर भी कहता हूँ— सदा ऐसी ही मति रखना। चाहे जितनी बड़ी विपत्ति पड़े, अपनी नियत न डुलाना।

❀ ❀ ❀

ऊपर चातक-पुत्र सुन रहा था। उसकी आँखों से भी झर झर आँसू झरने लगे। बड़ी कठिनता से वह रात बिता सका। पौ फटते ही बड़े सबेरे वह फिर उड़ा। परन्तु आज वह विपरीत दिशा को चला; उसी दिशा को, जिधर से वह आया था। उसकी उड़ान पहले से तेज हो गई थी। फिर भी अपने कोटर तक पहुँचने में उसे चार दिन की जगह सात दिन लग गये। दूसरे दिन से ही मेघों ने उठ कर ऐसी झड़ी लगा दी कि बीच बीच में कई जगह रुक कर ही वह वहाँ तक पहुँच सका।

फाल्गुन शुक्ल ८–१९८९

काकी

उस दिन बड़े सबेरे जब श्यामू की नींद खुली तब उसने देखा—घर-भर में कुहराम मचा हुआ है। उसकी काकी—उमा—एक कम्बल पर नीचे-से ऊपर तक एक कपड़ा ओढ़े हुए भूमि-शयन कर रही है, और घर के सब लोग उसे घेर कर बड़े करुण-स्वर में विलाप कर रहे हैं।

लोग जब उमा को स्मशान ले जाने के लिए उठाने लगे तब श्यामू ने बड़ा उपद्रव मचाया। लोगों के हाथों से छूट कर वह उमा के ऊपर जा गिरा। बोला—काकी तो सो रही हैं। उन्हें इस तरह उठा कर कहाँ लिये जा रहे हो? मैं न ले जाने दूँगा।

लोगों ने बड़ी कठिनता से उसे हटा पाया। काकी के अग्नि-संस्कार में भी वह न जा सका। एक दासी राम-राम करके उसे घर पर ही सँभाले रही।

यद्यपि बुद्धिमान गुरुजनों ने उसे विश्वास दिलाया कि उसकी काकी उसके मामा के यहाँ गई है, परन्तु असत्य के आवरण में सत्य बहुत समय तक छिपा न रह सका। आस-पास के अन्य अबोध बालकों के मुँह से ही वह प्रकट हो गया। यह बात उससे छिपी न रह सकी कि काकी और कहीं नहीं, ऊपर राम के यहाँ गई है। काकी के लिए कई दिन तक लगातार रोते रोते उसका रुदन तो क्रमशः शान्त हो गया, परन्तु शोक शान्त न हो सका। जिस तरह वर्षा के अनन्तर एक ही दो दिन में पृथ्वी के ऊपर का पानी अगोचर हो जाता है, परन्तु बहुत भीतर तक उसकी आर्द्रता बहुत दिन तक बनी रहती है, उसी प्रकार वह शोक उसके अन्तस्तल में जा कर बस गया। वह प्रायः अकेला बैठा बैठा शून्य मन से आकाश की ओर ताका करता।

एक दिन उसने ऊपर एक पतंग उड़ती देखी। न जानें क्या सोच कर उसका हृदय एक दम खिल उठा। विश्वेश्वर के पास जा कर बोला—काका, मुझे एक पतंग मँगा दो। अभी मँगा दो।

पत्नी की मृत्यु के बाद से विश्वेश्वर बहुत अन्यमनस्क-से रहते थे। 'अच्छा मँगा दूँगा' कह कर वे उदास भाव से बाहर चले गये।

श्यामू पतंग के लिए बहुत उत्कण्ठित हो उठा। वह अपनी इच्छा किसी तरह न रोक सका। एक जगह खूँटी पर विश्वेश्वर का कोट टँगा हुआ था। इधर-उधर देख कर उसने उसके पास एक स्टूल सरका कर रक्खा और ऊपर चढ़ कर कोट की जेबें टटोलीं। उनमें से एक चवन्नी का आविष्कार करके वह तुरन्त वहाँ से भाग गया।

सुखिया दासी का लड़का—भोला—श्यामू का सम-वयस्क साथी था। श्यामू ने उसे चवन्नी दे कर कहा—अपनी जीजी से कह कर गुपचुप एक पतंग और डोर मँगा दो। देखो, खूब अकेले में लाना; कोई जान न पावे।

पतंग आई। एक अँधेरे घर में उसमें डोर बाँधी जाने लगी। श्यामू ने धीरे से कहा—भोला, किसी से न कहे तो एक बात कहूँ।

भोला ने सिर हिला कर कहा—नहीं, किसीसे न कहूँगा।

श्यामू ने रहस्य खोला। कहा—मैं यह पतंग ऊपर राम के यहाँ भेजूँगा। इसे पकड़ कर काकी नीचे उतरेंगी। मैं लिखना नहीं जानता। नहीं तो इस पर उनका नाम लिख देता।

भोला श्यामू से अधिक समझदार था। उसने कहा—बात तो बड़ी अच्छी सोची, परन्तु एक कठिनता है। यह

डोर पतली है। इसे पकड़ कर काकी उतर नहीं सकती। इसके टूट जाने का डर है। पतंग में मोटी रस्सी हो तो सब ठीक हो जाय।

श्यामू गम्भीर हो गया। मतलब यह,—बात लाख रुपये की सुझाई गई है। परन्तु कठिनता यह थी कि मोटी रस्सी कैसे मँगाई जाय। पास में दाम हैं नहीं और घर के जो आदमी उसकी काकी को बिना दया-माया के जला आये हैं, वे उसे इस काम के लिए कुछ नहीं देंगे। उस दिन श्यामू को चिन्ता के मारे बड़ी रात तक नींद नहीं आई।

पहले दिन की ही तरकीब से दूसरे दिन फिर उसने विश्वेश्वर के कोट से एक रुपया निकाला। ले जा कर भोला को दिया और बोला—देख भोला, किसी को मालूम न होने पावे। अच्छी अच्छी दो रस्सियाँ मँगा दे। एक रस्सी ओछी पड़ेगी। जवाहिर भैया से मैं एक कागज पर 'काकी' लिखवा रक्खूँगा। नाम की चिट रहेगी तो पतंग ठीक उन्हींके पास पहुँच जायगी।

दो घण्टे बाद प्रफुल्ल मन से श्यामू और भोला अँधेरी कोठरी में बैठे बैठे पतंग में रस्सी बाँध रहे थे। अकस्मात् शुभ कार्य में विघ्न की तरह उग्र मूर्ति धारण किये हुए विश्वेश्वर वहाँ आ घुसे। भोला और श्यामू को धमका कर बोले—तुमने हमारे कोट से रुपया निकाला है?

भोला सकपका कर एक ही डाँट में मुखबिर बन गया ! बोला—श्यामू भैया ने रस्सी और पतंग मँगाने के लिए निकाला था।—विश्वेश्वर ने श्यामू को दो तमाचे जड़ कर कहा—चोरी सीख कर जेल जायगा ? अच्छा, तुझे आज अच्छी तरह समझाता हूँ।—कह कर दो-चार थप्पड़ और जड़ कर पतंग फाड़ डाली । अब रस्सियों की ओर देख कर उन्होंने पूछा—ये किसने मँगाई ?

भोला ने कहा—इन्होंने मँगाई थीं। कहते थे, इससे पतंग तान कर काकी को राम के यहाँ से नीचे उतारेंगे।

विश्वेश्वर एक क्षण के लिए हतबुद्धि हो कर खड़े रह गये । उन्होंने फटी हुई पतंग उठा कर देखी । उस पर एक कागज चिपका था, जिस पर लिखा हुआ था—"काकी"।

चैत्र कृष्ण ९—'८१

श्री सियारामशरण गुप्त लिखित

आर्द्रा	१)
मौर्य्य-विजय	।)
अनाथ	।)
विषाद	।–)
दूर्वा-दल	॥=)
आत्मोत्सर्ग	॥=)
गोद (उपन्यास)	१।)
पुण्य-पर्व (नाटक)	॥।)

—प्रेस में—

पाथेय (कविता-संग्रह)

प्रबन्धक,

साहित्य-सदन,

चिरगाँव (झाँसी)

श्री मैथिलीशरण गुप्त लिखित काव्य

गुरुकुल	२)	
हिन्दू	१)	१।)
पञ्चवटी	।=)	
अनघ	।।।)	
स्वदेश-संगीत	।।।)	
त्रिपथगा	१।।)	
शक्ति	।)	
विकट भट	=)	
झङ्कार	।।=)	
भारत-भारती	१)	१।।)
जयद्रथ-वध	।।)	१)

—नये ग्रन्थ—

साकेत	३)
यशोधरा	१।।)

प्रबन्धक,
साहित्य-सदन,
चिरगाँव (झाँसी)